आत्मधर्म
मासिक : वर्ष-१९ * अंक-२ * अक्टुबर-२०२४

सम्यग्दर्शनरूपी अप्रतिहत सुप्रभात

मैं आत्मा चैतन्यभानु हूँ। जैसे सूर्यको दीपककी आवश्यकता नहीं वैसे मेरे चैतन्यप्रकाशको परकी अपेक्षा नहीं है। मेरी ही चैतन्यशक्ति द्वारा सब कुछ जाननेमें आ रहा है। यह चैतन्यशक्ति परिपूर्ण है। और विकार रहित है।–ऐसी यथार्थ श्रद्धा और जो पहिचान होने पर अनादिका मिथ्यात्वरूप अंधकारका नाश हुआ वह पुनः कदापि उत्पन्न नहीं होगा, और सम्यक्त्वरूप प्रकाश प्रकट हुआ उसका कभी नाश नहीं होगा। सम्यग्दर्शन हुआ वह अब अप्रतिहतरूपसे अवश्य सिद्धदशा प्राप्त करेगा। अभी भी क्षायिक जैसे अप्रतिहत सम्यक्त्वका ही आभास जीव प्रकट कर सकता है। आत्मामें जो सम्यग्दर्शनका उत्पाद हुआ वह नाश रहित है। उस सम्यग्दर्शनको भी सुप्रभातकी उपमा है। कार्तिक शुक्ल-१ का दिन तो अनंतकालमें अनंतबार उदित हुआ और अस्त भी हो गया, लेकिन सम्यग्दर्शनरूपी प्रभात बिना जीवका कुछ भी कल्याण हुआ नहीं। यह सम्यग्दर्शन तो ऐसा सुप्रभात है कि जो उदित हुआ सो उदित हुआ उसका कभी अस्त नहीं होगा। ऐसे सम्यग्दर्शनपूर्वक ज्ञान और क्रियासे मोक्षरूपी सुप्रभात प्रकट होता है।

मैं ज्ञानस्वभावी हूँ, चैतन्यशक्तिसे परिपूर्ण हूँ, मेरी चैतन्यशक्ति अन्य किसी द्रव्यमें नहीं है। परसे मैं सर्वथा पृथक् हूँ और मेरे सर्व गुणोंसे मैं परिपूर्ण हूँ;–इस प्रकार यथार्थरूपसे पहिचान कर जीव स्वयं स्वयंके स्वभावकी ओर झुका वहाँ पुण्य-पापरूप व्यवहारका नाश होने लगा। स्वयंके अस्तिस्वभावकी ओर झुकाव किया और पर्यायमें विकार होने पर भी उस ओर झुकावको रवींच लिया, अर्थात् स्वभावकी अस्तिके जोरसे विकारकी नास्ति होने लगी। ऐसे जीवको अवश्य सर्व कर्मोंका नाश होता है और केवलज्ञानादि स्वचतुष्टय स्वरूप आत्मा उदित होता है–वह ही सुप्रभात है।

–पुरुषार्थ प्रेरणामूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री

आगम महासागरके अमूल्य रत्न

● संसारीमें सांसारिक गुण होते हैं और सिद्धजीवमें सदा समस्त सिद्धिसिद्ध (मोक्षसे सिद्ध अर्थात् परिपूर्ण हुए) निज परमगुण होते हैं—इस प्रकार व्यवहारनय है। निश्चयसे तो सिद्धि भी नहीं है और संसार भी नहीं है। यह सुबुध पुरुषोंका निर्णय है।६७।

(श्री पद्मप्रभमलधारिदेव, नियमसार टीका, श्लोक-३५)

● आत्मा विभाव परिणतिसे दुःखी दिखाई देता है, परन्तु उसकी शुद्ध चैतन्य शक्तिका विचार करो तो वह साहजिक शांतिमय ही है। वह कर्मके संयोगसे गति-योनिका प्रवासी कहलाता है, परन्तु उसका निश्चयस्वरूप देखो तो कर्मबन्धनसे मुक्त परमेश्वर ही है। उसी ज्ञायकशक्ति ऊपर दृष्टि दो तो वह लोकालोकका ज्ञाता-दृष्टा है, जो उसके अस्तित्वके ऊपर ध्यान दो तो निज क्षेत्रावगाह प्रमाण ज्ञानका पिंड है। ऐसा जीव, जगतका ज्ञाता है। उसकी लीला विशाल है, उसकी कीर्ति कहाँ नहीं? अनादिकालसे चली आ रही है और अनंतकाल तक चलेगी।६८।

(श्री बनारसीदासजी, नाटक समयसार, साध्य-साधक द्वार, पद-५०)

● ये सब द्रव्य अपने प्रदेशोंकर सहित है, किसीके प्रदेश किसीसे नहीं मिलते। इन छहों द्रव्योंमें जीव ही उपादेय है, यद्यपि शुद्ध निश्चयसे शक्तिकी अपेक्षा सभी जीव उपादेय है, तो भी व्यक्तिकी अपेक्षा पंचपरमेष्ठी ही उपादेय है, उनमें भी अरिहंत सिद्ध ही (उपादेय) है, उन दोनोंमें भी सिद्ध ही (उपादेय) है और निश्चयनयकर मिथ्यात्व रागादि विभावपरिणामके अभावमें विशुद्धात्मा ही उपादेय है। ऐसा जानना।६९।

(श्री योगीन्द्रदेव, परमात्मप्रकाश, अधिकार-२, गाथा-२२)

● जो चेतनतत्त्व कर्मकृत विकारके संसर्गसे रहित हैं वही मैं हूँ। उसे (चैतन्य स्वरूप आत्माको) संसार और जन्म-मरणादि कुछ भी नहीं है तो फिर भला मुझे (आत्माको) चिंता कहाँसे हो सकती है? अर्थात् नहीं हो सकती।७०।

(श्री पद्मनंदि आचार्य, पद्मनंदि पंचविंशति, श्लोक-३६)

● (ज्ञानी शुद्धनयका अवलम्बन लेकर ऐसा अनुभव करता है) मैं अपनेको अर्थात् मेरे शुद्धात्मस्वरूपको न तो द्रव्यसे खंडित करता हूँ, न क्षेत्रसे खंडित करता हूँ, न कालसे खंडित करता हूँ और न भावसे खंडित करता हूँ, विशुद्ध एक ज्ञानमात्र भाव हूँ।७१।

(श्री अमृतचंद्राचार्य, समयसार टीका, परिशिष्ट)

वर्ष-19
अंक-2

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्ग दर्शानेवाली मासिक पत्रिका

वि. संवत 2080
October
A.D. 2024

भगवान महावीरकी...मुक्तिका...मंगल...महोत्सव

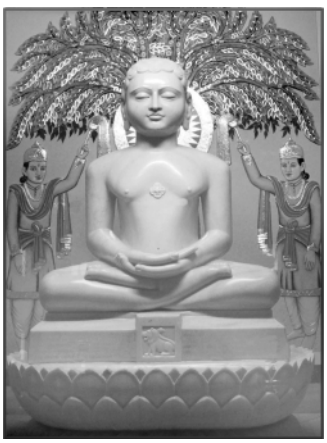

महावीर भगवान स्वयं सिद्ध हुए वह तो सर्वोत्कृष्ट मंगल है..और..जो भव्यात्माओंने अपने आत्मामें शुद्ध सम्यग्दर्शनादि प्रकाश प्रकट करके सिद्धदशा सन्मुख पुनीत कदम रखे वे भी धन्य है... वह भी अपूर्व मंगल है।

आज मुक्तिके महोत्सवका मांगलिक दिन है। इस भरतक्षेत्रके अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान आज मुक्त हुए। आजसे २५५१ वर्ष पूर्व जब वे इस भरतभूमिमें तीर्थंकररूपमें विचरण करते थे; उस समय तो इन्द्र और देवगणके समूह पूजा-भक्ति करने यहाँ आते थे। आज कार्तिक कृष्ण अमावस्याके प्रातः भगवान अभूतपूर्व सिद्धदशाको प्राप्त हुए; उसका आज महोत्सव है। भगवान पावापुरीसे मोक्ष पधारे; तब देव-देवेन्द्र और अनेक राजाओंने रत्नदीपकों द्वारा भगवानका निर्वाण-कल्याणकका महोत्सव मनाया, इसलिये वह दिन दीपावली पर्वके रूपमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार दीपावली पर्व लौकिक त्योहारका दिन नहीं है लेकिन भगवानकी मुक्तदशाका मांगलिक महोत्सव है।

मोक्षार्थी जीवोंको यह विचार करना चाहिये कि भगवान कौन थे और वे किस प्रकार मोक्षको प्राप्त हुए? महावीर भगवान भी जैसे यह सभी आत्मा है वैसा ही आत्मा है; वह भी पूर्वमें अज्ञानदशामें चार गतिमें भ्रमण कर रहा था; फिर कोई धन्य अवसर पाकर अपूर्व

पुरुषार्थसे आत्मतत्त्वको पहिचानकर उन्नति सोपान चढ़ते चढ़ते वे तीन लोकके नाथ तीर्थंकर हुए। आत्मामें जो केवलज्ञान और परमानंद सामर्थ्यरूप था वह उनकी पर्यायमें परिपूर्ण व्यक्त हो गया। भगवान जैसा ही स्वभाव सामर्थ्य प्रत्येक आत्मामें भरा है; उसकी पहिचान करके उसमें लीन होने पर पर्यायमें वह व्यक्त होता है। इस प्रकार कोई भी आत्मा भगवान जैसी दशा प्रकट कर सकता है।

महावीर भगवानका आत्मा अभी सिद्धदशामें पावापुरीके उपर सिद्धक्षेत्रमें विराजमान है, पूर्ण अतीन्द्रिय आनंद उन्हें प्रकट हो गया है, देहरहित दशा प्रकट हो गई है, किसी भी अन्य द्रव्योंकी अपेक्षा बिना मात्र आत्मस्वभावसे ही वे परिपूर्ण ज्ञान और सुखमय हो गये है, और अब आगेके अनंतकाल तक ऐसी ही कृतकृत्यदशामें विराजमान रहेंगे। अहा ! वह सिद्धदशाकी महिमाकी क्या बात ? धन्य वह दशा...

'सादि अनंत अनंत समाधि सुखमें;
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जो,
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा ?'

देखो, यह आत्माके सिद्धपदकी महिमा ! यह सिद्धपदकी महिमा करने जैसी है। किसीके यहाँ पुत्रका जन्म हो, विवाह हो तो जगतमें उसे मंगल कहते है, वास्तवमें तो आत्माकी मोक्षदशा प्रकट हो वह ही अपूर्व मंगल है। बड़ा राजवैभव या बंगला और स्त्री या पुत्र आदि संयोगों तो पूर्वमें अनंतबार जीवको मिल गये है, लेकिन पूर्वमें कदापि नहीं प्राप्त की ऐसी तो एक मोक्षदशा ही है। इसलिये वह ही अभूतपूर्व है। भगवान ऐसी अभूतपूर्व सिद्धदशाको आज प्राप्त हुए। भगवानकी भांति यह आत्मा भी किस प्रकार मोक्षकी प्राप्ति करे, मोक्षका उपाय क्या है वह समझना चाहिये। भगवान तो मोक्षको प्राप्त हुए उसका महोत्सव मनावे और पूजन करे, लेकिन मोक्षका उपाय क्या है वह स्वयं न समझे तो स्वयंको अपूर्व कल्याणका लाभ नहीं है।

अभी इस भरतक्षेत्रमें महावीर भगवानका शासन चल रहा है। महावीर भगवान मोक्ष पधारे पश्चात् गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी और जम्बूस्वामी तीन पीढ़ी तक केवलज्ञान रहा और तत्पश्चात् एकावतारी हुए और अभी पंचमकालके अंत तक एकावतारी जीव होनेवाले है। जैसा एकावतारीपना पंचमकालके प्रारंभमें चौदपूर्वधारी मुनिओंको था वैसा ही एकावतारीपना पंचमकालके अंतके जीवोंको भी होगा।

अरिहंतदशामें श्री महावीर परमात्माने दिव्यध्वनि द्वारा जो वस्तुस्वरूप कहा वह गणधर भगवंतोंने ग्रहण किया, वह ही आचार्य परम्परासे अभी तक चला आ रहा है। वीतरागी संतोंने सर्वज्ञ भगवानकी वाणीकी परम्पराको कायम रखकर मोक्षमार्गको प्रवाहित रखा है। अहा ! पंचमकालके अंत तक आत्मभान करके एकावतारीपना प्रकट करनेवाले जीव होंगे, तो अभी तो अवश्य आत्मभान कर सकते है। आत्माका भान होने पर अंदरसे भवके अंतकी सुनिश्चितता आ जाती है।

परम पूज्य सद्गुरुदेवश्रीका

सुप्रभात मांगलिक

आत्माकी जीवनशक्ति

आत्माके स्वभावमेंसे पूर्णदशा प्रकट हो वह ही मंगल-प्रभात है, वह ही नूतन वर्ष है। जिसके आत्मामें सुप्रभात प्रकट हुआ उसके जन्म-मरण नाश होकर सिद्धदशा प्रकट होती है , आत्मा शरीरसे अथवा पैसासे जीवित नहीं है। उससे तो आत्मा पृथक् है। आत्माका जीवन कैसा होता है ? उसे आचार्यदेव दर्शाते है।

आत्मामें जीवनशक्ति है। अनादि अनंत आत्मा ज्ञानदर्शन शक्तिको धारण करता है, ऐसी आत्मामें जीवनशक्ति है, और उस शक्तिसे आत्मा सदा जीवित है। जैसे आत्मामें 'ज्ञान' शक्ति है, वैसे एक 'जीवन' नामकी शक्ति भी है। आत्मामें ज्ञान है, दर्शन है, सुख है, आनंद है, पुरुषार्थ है, शांति है और जीव है–उसके सभी गुण वह ही आत्माका कुटुम्ब है और वह नित्य आत्माके साथ ही रहता है। स्वयंके अनंत गुण वह ही आत्माका कुटुम्ब है, जिसकी उसे खबर नहीं है वह जीव बाह्यमें कुटुम्ब, शरीर और पैसा आदिको कायम रखनेकी भावना करता है, लेकिन वह अज्ञान है, और दुःखका कारण है। मेरी जीवनशक्तिसे मैं सदा जीवित ही हूँ। ज्ञान-आनंद आदि अनंतगुणोंरूपी मेरा कुटुम्ब है। मेरे सभी गुणोंके साथ पूर्णरूपसे निर्मल-पवित्र जीवन स्थायी रहो–ऐसी भावना आत्मार्थी जीव करते है। वह ही महा मांगलिक है–ऐसा श्री ज्ञानी पुरुष कहते है।

श्री समयसारजी शास्त्रमें (५०३ पृष्ठ पर) आत्माकी ४७ शक्तियोंका वर्णन किया है। उसमें सर्वप्रथम ही आत्माकी जीवत्वशक्तिका वर्णन आचार्य भगवानने किया है। जीवत्व शक्ति अर्थात् जीवन जीनेकी शक्ति, जीवनशक्ति आत्मामें जीवनशक्ति है इसलिये वह नित्य जीवित ही है; इस शरीरसे या इन्द्रियोंसे आत्मा जीवित नहीं है लेकिन ज्ञान और दर्शनरूप चैतन्यप्राणसे ही आत्मा जीवित है। 'आत्मद्रव्यके कारणभूत ऐसा चैतन्यमात्र भावका धारण जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी जीवनशक्ति'–आत्मामें उछलती है। आत्मामें चैतन्यप्राण है, और इसलिये आत्मा सदा जीवित है। यदि चैतन्यशक्तिका नाश हो तो आत्माकी मृत्यु हो जाय, किन्तु चैतन्यशक्ति तो सदा त्रिकाल है, इसलिये आत्मा नित्य जीवित है। ऐसी चैतन्यस्वरूप जीवत्वशक्ति आत्मामें कायम है।

आत्माका चैतन्यमात्र भाव है और यह शरीर तो जड़-अचेतन है। चैतन्यस्वरूपी आत्मा शरीरके आधारसे जीवित नहीं है और शरीरके प्राणोंको आत्मा धारण करता नहीं है। और पुण्यके आधारसे आत्मा जीवित नहीं है व पुण्यको आत्मा धारण करता नहीं है; शुद्धज्ञान-दर्शनरूप चैतन्यप्राणको आत्मा धारण करता है और उससे ही आत्मा जीवित है। आत्मामें 'जीवत्व' नामकी खास शक्ति है, तीनोंकाल और तीनोंलोकमें आत्मा चैतन्यप्राणोंको धारण करके ही जीवित रहा है; शरीरको आत्माने कदापि धारण किया ही नहीं है और आत्माके स्वभावको विकारने कदापि धारण किया नहीं है। शरीर और विकारसे पृथक् ऐसी चैतन्यशक्तिको धारण करके जीवका नित्यपना वह ही सुप्रभात है। चैतन्यशक्तिरूप स्वयंका जीवन है उसे पहिचानना और उसमें ही कायम रहना और विकारमें नहीं रहना वह ही सुप्रभात है। ऐसे सुप्रभातकी यहाँ भावना है।

जीवका परिवार

जीवका परिवार जीवसे पृथक् नहीं होता और जीवसे कदापि पृथक् होता नहीं है। ज्ञान, सुख आदि अनंत शक्तियाँ है वह सभी साथमें ही रहती है, एक शक्ति दूसरी शक्ति बिना नहीं रहती है। इस प्रकार आत्माका गुणोंरूपी परिवार साथ रहता है। ऐसा अनंत गुणोस्वरूपी मेरा परिवार सदा पवित्ररूपसे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्रमें नित्य रहो ऐसी धर्मीजीवकी भावना है। अनंत गुणोंसे सदा परिपूर्ण स्वयंके आत्मस्वभावका ज्ञान और उसमें स्थिरता वह ही मुक्तिकी क्रिया है, उस क्रियासे ही आत्माके अनंत चतुष्टय प्रकट होता हैं और वह ही आत्माका सुप्रभात है।

श्री इष्टोपदेश पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

प्रवचन नं.-३६ (गाथा-३३)

स्वयंका उपकार कर

यह श्री इष्टोपदेशकी ३२वीं गाथा चलती है।

अनादिकालसे अज्ञानी जीव देह और कर्मादि परद्रव्यों पर उपकार करता आया है अर्थात् शरीर और कर्म आदि पर लक्ष रखकर उसकी सावधानीमें ठहरा हुआ है और स्वयंकी सावधानी छोड़ दी है। उसे पूज्यपाद स्वामी कहते है कि तू परका उपकार छोडकर स्वयंके ऊपर उपकार कर !

कर्म जीवको बंधन करता है उसमें कर्मका उपकार होता है और कर्मको छोड़ता है उसमें आत्माका उपकार होता है। सज्जन मनुष्य जब तक परको स्वयंका मानता था तब तक तो एकत्वपूर्वक परकी सेवा करता था लेकिन जब जाना कि यह पर है वहाँ उस एकत्वपूर्वक परकी सेवा न करते स्वयंकी सेवा करने लग जाता है। उसी प्रकार हे जीव ! तू भी परकी सावधानी छोडकर तेरे स्वभावकी सावधानी कर !

यहाँ जीव परका उपकार कर सकता है यह बात लेना नहीं लेकिन उसके भावमें ऐसा है कि मैं शरीर, कुटुम्ब, गाँव, देश आदिका उपकार करूँ उस भावमें उसे परके उपकारकी भावना है ऐसी बात लेनी है। अज्ञानी जीव अविद्या-अज्ञान और मोहके वश परमें उपकार करनेमें लगा है उसे गुरु कहते है कि अरे मूढ़ ! तू एकबार स्वयंके सामने तो देख ! अपने ऊपर उपकार कर न !

अब शिष्य प्रश्न करता है कि आपने कहा कि परका उपकार नहीं करना और स्वयंका उपकार करना तो स्वयंको और परको किस उपायसे पृथक् जानना ? और उसे पृथक् जाननेसे किस फलकी प्राप्ति होती है ? शिष्यके इस प्रश्नका उत्तर गुरु ३३वीं गाथामें देते हैं।

गुरूपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरं।
जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम्॥३३॥
गुरु-उपदेश, अभ्यास और, संवेदनसे जो,
जाने निज-पर भेदको, वेदे शिव-सुख तेह॥३३॥

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे, — सुप्रभात-स्तोत्र

गुरुके उपदेशसे जो अभ्यास करता हुआ स्वयंके ज्ञानसे स्वयंके और परके भेदको जानता है वह मोक्षसुखका अनुभव करता है।

एक बात तो यह ली कि गुरुके उपदेशसे और दूसरी बात यह कि अभ्यास करनेवाला जिज्ञासु जीव स्व-परका भेद कर सकता है। गुरुका उपदेश कहने पर अज्ञानीके उपदेशका और स्वयं अपने आप किये अभ्यासका निषेध आ गया। सच्चे धर्मात्मा ज्ञानीके उपदेशसे अभ्यास करते स्वयंके ज्ञानमें स्व-संवेदन होता है उससे यह आत्मा आनंदस्वरूप है वह मैं हूँ और पुण्य-पाप, कर्म, शरीरादि पर है ऐसा स्व-परका भेदज्ञान होता है।

यह बातें तो सभी मक्खनकी है, मात्र तैरता हुआ सत्य है, गुरुका उपदेश ऐसा था कि तू अनंत आनंद, ज्ञान और सुखका धाम है और पुण्य-पापके विकल्प है वह आस्रव तत्त्व है और कर्म, शरीरादि वह अजीव तत्त्व है, ऐसा उपदेश वह यथार्थ है। संसारकी शिक्षाका तो अभ्यास करता है वह तो सभी पापका अभ्यास है।

श्रोता :–तो फिर हमें संसारकी शिक्षाका अभ्यास नहीं करना चाहिये ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–भाई ! यहाँ करना नहीं करनेकी बात नहीं है। वह तो तुझे मोह है अर्थात् तू उस शिक्षाका अभ्यास किये बिना रहेगा नहीं। यहाँ तो उसका स्वरूप क्या है उसे दर्शाते है कि अभ्यास तो तुझे स्व-परकी पृथक्ताका नहीं किन्तु एकत्वपनेका करायेंगे। तू ऐसा करेगा तो अन्यका क्या हित होगा, ऐसा करेगा तो तुझे तेरा हित होगा ऐसी विपरीत शिक्षा तुझे मिलेगी।

यहाँ तो कहते है कि गुरुके उपदेशके अभ्याससे तू अपना स्व-संवेदनज्ञान प्रकट कर। जिससे तुझे स्व-परका भेदज्ञान होगा। ऐसा भेदज्ञान जो करता है उसे भेदज्ञानके फलमें मोक्षका सुख मिलता है संसारकी शिक्षाके फलमें दुःख मिलता है जब कि यहाँ तो मोक्षका सुख मिलता है। मोक्ष अर्थात् आत्मा जिस स्वरूपमें है उस स्वरूपमें रहे उसका नाम मोक्ष है।

धर्माचार्य उसे कहते है कि जिसे स्व-परकी पृथक्ताका भान हो और स्व-परकी पृथक्ताका उपदेश देते है वे धर्माचार्य है। उनका उपदेश ग्रहण कर जो स्वयं स्व-परकी पृथक्ताका अभ्यास करके स्वसंवेदनसे स्व-परकी पृथक्ता करता है उसके फलस्वरूप अविनाशी मोक्षसुखका अनुभव करता है।

यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्रवैः
संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सव।१।

गुरु तो उपदेश देते है और स्वयं न समझे तो निष्फल है लेकिन यहाँ तो कहा है कि गुरुके उपदेशके निमित्त स्वयं समझकर अर्थात् स्वयंका गुरु होकर स्व-परकी पृथक्ता करता है तभी ही गुरुके उपदेशसे भेदज्ञान हुआ ऐसा कहा जाता है।

भाई ! स्व और पर दो भिन्न तत्त्व है फिर भी तू अनादिसे उसकी एकताका अभ्यास करता आया है। अब तू स्वयं ही अपना गुरु बनकर स्व-परकी भिन्नताका अभ्यास करेगा तो तेरा उपकार होगा।

गुरुका उपदेश कैसा है ?–कि सुदृढ स्व-परका विवेकज्ञान प्रकट हो ऐसे गुरुके वाक्य है और उसे सुनकर मोक्षार्थी जीव ऐसी दृढ़ता करता है कि ''आत्मा चैतन्य ज्ञायक है वह स्व है और रागादि वह पर है।'' ऐसे बारम्बारके अभ्याससे स्वसंवेदन प्रकट करके मोक्षसुखको प्राप्त करता है।

स्पष्ट ही बात है कि जहाँ स्व-परकी एकताका ज्ञान है वहाँ दुःख है और स्व-परकी भिन्नताका ज्ञान है वहाँ सुख है। जहाँ ऐसा बोध मिले कि परलक्षी ज्ञानसे सुख है और स्वयंको भी ऐसा लगे कि परलक्ष करनेसे मुझे सुख है वह अज्ञान है और वहाँ दुःख ही है।

श्रोता :–अज्ञानके पीछे कर्मका जोर है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :–कर्मका जोर किस दिन था ? स्वयंके विपरीतभावका जोर है। स्व और पर जो पृथक् है उसकी एकता माननेवालेको विपरीत मान्यताके जोरके कारण अज्ञान है। कर्म मुझे दुःखी करता है वह मान्यता मिथ्या है। कर्म और आत्मा तो भिन्न तत्त्व है। वह कर्म आत्माको दुःखी कैसे कर सकता है ? आत्मा स्वयं ही स्वयंके अज्ञानसे दुःखी है।

ऐसे अज्ञानीको गुरुका उपदेश मिले और स्वयं भी स्व और परकी भिन्नताका अंतर्जल्प करके स्वयंका गुरु स्वयं बने अर्थात् कि सुदृढ़ विवेकज्ञान प्रकट करनेवाले गुरुके वाक्य और स्वयंके विचार अनुसार अभ्यास करे कि ''स्व-पर बिलकुल भिन्न तत्त्व है। मैं परका हित न करूँ, पर मेरा हित न करे, जो मुझसे परद्रव्य है वह मेरा हित तीनकालमें कदापि नहीं कर सकता। मेरे हितका कर्ता मैं ही हूँ ऐसा स्वयं अभ्यास करे। गुरुका उपदेश भी यह ही होता है कि परमें लेशमात्र सुख नहीं है। तेरा सुख तुझमें है।'' ऐसे सुदृढ़ विवेक उत्पन्न करानेवाले गुरुके वाक्य द्वारा स्वयंको अभ्यास करना चाहिये। गुरु कुछ कहे और स्वयं विचार कुछ अन्य करे तो उसने गुरुका उपदेश ग्रहण नहीं किया है। (क्रमशः) ✻

श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभिः आलीढपादयुग दुर्धरकर्मदूर,
श्रीनाभिनंदन जिनाजित शंभवाख्य त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं।२।

अध्यात्म संदेश

(रहस्यपूर्ण चिट्ठी पर परम पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

केवलज्ञानका अंश आत्मज्ञानकी अचिन्त्य महिमा

देखो भाई ! यह बात सूक्ष्म एवं गम्भीर तो है, किन्तु है अपने परम हितकी बात ! इसलिये बहुत ध्यान देकर खास अच्छी तरह समझने योग्य है। ध्यान रखके अंतरमें समझना चाहे तो अवश्य समझमें आ जाय। यह कोई दूरदूरवालोंकी किसीकी बात नहीं है, परन्तु अपने आत्मामें जो स्वभाव विद्यमान है इसीकी यह बात है, अतएव 'यह बात मेरे आत्माकी ही है'–ऐसी स्वोन्मुख दृष्टि करके समझनेसे शीघ्र ही समझमें आ जायेगी, और समझते ही अपूर्व आनंद होगा, ऐसी यह चीज है।

प्रश्न :–छद्मस्थ जीव केवलज्ञानका स्वरूप कैसे समझ सकता है ?

उत्तर :–छद्मस्थज्ञानी भी केवलज्ञानका स्वरूप अच्छी तरह जान सकता है; उसने ज्ञानको स्वसन्मुख करके सर्वज्ञताके अखंड सामर्थ्यसे भरपूर ऐसे अपने ज्ञानस्वभावका जो निर्णय किया है उसमें केवलज्ञानके स्वरूपका भी स्पष्ट प्रतिभास हो गया है। यदि केवलज्ञानको ही न पहिचाना तो मोक्षतत्त्वको भी न पहिचाना; मोक्षतत्त्वको जो न पहिचाने वह मोक्षमार्गको भी न पहिचाने; और मोक्षमार्गको जो न पहिचाने उसे धर्म कहाँसे होगा ? जैसे किसी सज्जनके पास एक रुपया सच्चा हो, भले ही अरब रुपये उसके पासमें न हों, तो क्या अरब रुपयोंको वह जान भी न सके ? जैसा मेरे पास यह सच्चा रुपया है उसी जातिका अरबों रुपया होता है–ऐसा वह अच्छी तरहसे जान सकता है, वैसे ही सम्यग्दृष्टि मति-श्रुतज्ञानी संतके पास केवलज्ञान भले ही प्रकट न हो, परन्तु शुद्धात्माकी श्रद्धाके साथ ज्ञानका जो सम्यक् अंश उसके पास है उसके बलसे पूर्ण ज्ञानस्वभावका निर्णय करके, केवलज्ञान कैसा है यह भी उसने अच्छी तरह जान लिया है; और 'उस केवलज्ञानकी जातिका ही मेरा यह सम्यग्ज्ञान है'–ऐसा वह निःशंक जानता है। हजार कलियोंवाले कमलकी जो कलियाँ पहले थोड़ी खिलीं वही वृद्धिंगत होकर पूरी खिलती हैं, वैसे अनन्त

छत्रत्रयं प्रचलचामरवीज्यमान देवाभिनंदन मुने सुमते जिनेन्द्र,
पद्मप्रभारुणमणिद्युतिभासुरांग त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं। ३ ।

कलियोंवाला जो चैतन्यकमल उसमें सम्यक्त्वसूर्यका उदय होनेपर जो मतिश्रुतरूप थोड़ी ज्ञानकला खिली वही ज्ञानकला स्वरूपमें एकाग्रताके द्वारा वृद्धिंगत होकर केवलज्ञानरूप पूर्णकला खिल जायेगी। इस तरह सम्यग्ज्ञानकी अपेक्षासे मति-श्रुत व केवलकी जाति एक ही है। इसी चिट्ठीमें आगे अष्टसहस्रीका आधार देकर पंडितजीने लिखा है कि केवलज्ञानकी तरह श्रुतज्ञान भी सर्वतत्त्वको प्रकाशनेवाला है, इनमें मात्र प्रत्यक्ष व परोक्षका ही भेद है, परंतु वस्तुस्वरूपसे वे एक दूसरेसे अन्य नहीं हैं।

सम्यग्दृष्टिको शुद्धात्माकी प्रतीतिरूप सम्यक् श्रद्धा हुई है, स्व-परके यथार्थ भेदज्ञानसे सम्यक् मति-श्रुतज्ञानरूप केवलज्ञानका अंश प्रकट हुआ है; अब इसके साथ उस सम्यग्दृष्टिका परिणाम कैसा होता है यह दिखाते हैं।

बाह्यमें उपयोगके समय भी धर्मीको सम्यक्त्वधारा चालू है, उस वक्त भी उपयोग व राग भिन्न है

'और इस सम्यक्त्वीके परिणाम सविकल्प व निर्विकल्परूप होकर दो प्रकारसे प्रवर्तते हैं। इनमें जो विषय-कषायादिरूप या पूजा-दान-शास्त्राभ्यासादिरूप प्रवर्तता है उसे सविकल्परूप जानना।'

जब सर्वप्रथम आत्मानुभवके साथ सम्यग्दर्शन प्रकट होता है तब तो निर्विकल्पदशा ही होती है, ज्ञानका उपयोग अन्तर्मुख होता है; परन्तु ऐसी निर्विकल्पदशा विशेष काल नहीं टिकती, इसलिये सविकल्पदशा आती है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टिके परिणाम निर्विकल्प व सविकल्प ऐसी दो दशारूप होकर प्रवर्तते है। ऐसा नहीं कि चौथे गुणस्थानमें निर्विकल्पदशा हो ही नहीं; एवं ऐसा भी नहीं कि सम्यक्त्व होनेके बाद विकल्प या राग हो ही नहीं। सम्यग्दृष्टि-गृहस्थको भी कभी कभी निर्विकल्प अनुभूति होती है; एवं चौथे-पाँचवें गुणस्थानमें उसकी भूमिकाके अनुसार विषय-कषायादिके अशुभ तथा पूजा-दान-शास्त्राभ्यास-धर्मात्माकी सेवा-साधर्मीका प्रेम-तीर्थयात्रा आदिके शुभपरिणाम भी आते हैं। उसके अशुभपरिणाम बहुत मंद होते हैं, विषय-कषायोंके प्रेम अंतरमेंसे छूट गये हैं, अशुभपरिणामके समय भी नरकादि हीन गतिकी आयु तो उसके बंधती ही नहीं। देव-गुरु-धर्मके प्रति उत्साह-भक्ति, शास्त्रके प्रति भक्ति, उसकी स्वाध्याय आदिका शुभपरिणाम

अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलवर्ण गात्र प्रा ले य ता रगिरिमौक्तिकवर्णगौर,
चंद्रप्रभ स्फटिक पांडुर पुष्पदंत त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं।४।

विशेषरूपसे होता है, परंतु उसका अंतर तो यह शुभसे भी उदास है। एक शुद्धात्मा ही उसके अंतरमें बसा है।

ज्ञानके साथ विकल्प वर्तता है इससे ऐसा कहा कि ज्ञान सविकल्परूप होकर वर्तता है; परंतु वास्तवमें ज्ञान तो स्वयं विकल्परूप नहीं होता; ज्ञान तो ज्ञानरूप ही रहता है, विकल्पसे भिन्न ही रहता है। ज्ञान व विकल्प इन दोनोंका भेदज्ञान धर्मात्माकी सविकल्पदशाके समय भी वर्त ही रहा है। परंतु उस भूमिकामें परिणामकी स्थिति कैसी होती है यह यहाँ दिखाना है। विषय-कषायके जरासे भी भाव हो वहाँ सम्यग्ज्ञान हो ही नहीं सकता–यदि ऐसा कोई माने तो वह ठीक नहीं है। अथवा विषय-कषायोंके परिणाम सर्वथा छूट करके वीतराग हो जाय तब ही सम्यग्ज्ञान हो सके–ऐसा कोई कहे, वह भी ठीक नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि उसको विषय-कषायका रस अंतरमेंसे सर्वथा हट जाता है, उसमें कहीं अंशमात्र भी आत्माका हित या सुख दिखता नहीं; अतएव उसमें वह स्वच्छंदतासे कभी नहीं वर्तता; वह 'सदननिवासी तदपि उदासी' होता है।

इसप्रकार धर्मीको सम्यग्ज्ञानके साथसाथ शुभ-अशुभ परिणाम भी रहता है, परंतु इससे उसके सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान दूषित नहीं हो जाते; ज्ञान-परिणाम अलग है और शुभाशुभ परिणाम अलग है, दोनोंकी धारा अलग-अलग है। विकल्प एवं ज्ञानकी भिन्नताका भान उसको विकल्पके समय भी बना रहता है। उपयोग भले परको जाननेमें वर्त रहा हो इससे कहीं श्रद्धा या ज्ञान मिथ्या नहीं हो जाते। इस प्रकार धर्मीको सविकल्पदशाके समय भी सम्यक्त्वकी धारा तो जैसीकी तैसी बनी ही रहती है।

सविकल्पदशामें अर्थात् उपयोग जब कहीं अन्यत्र हो तब भी सम्यक्त्व किस प्रकार वर्तता है? यह बात अब प्रश्नोत्तरसे दृष्टांतपूर्वक समझाते हैं। (क्रमशः) ✻

एक क्षणका भी स्वानुभव हजारों वर्षोंके शास्त्रपठनसे बढ़ जाता है। जिसको भव-समुद्रसे तिरना हो उसे स्वानुभवकी विद्या सीखने योग्य है।

• आत्मध्यानके अतिरिक्त अन्य सब कुछ घोर संसारका मूल है। एक ज्ञानस्वरूप प्रभुको ही ध्येय बनाकर ध्यान करना, इसके सिवाय शेष सब कुछ याने कि शुभ व अशुभ-भाव घोर संसारके मूल हैं। दया-दान आदिके रागसे भी भिन्न आत्माके ध्यानके अतिरिक्त जो कोई भी विकल्प हैं सो सब घोर संसारके मूल हैं।

संतप्तकांचनरुचे जिनशीतलाख्य श्रेयान्विनष्ट दुरिताष्ट कलंकपंक,
बंधूकबंधुर रुचे जिनवासुपूज्य त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं।५।

अनुभवप्रकाश पर प्रवचन

(गतांकसे आगे)

※ निजधर्माधिकार ※

शरीरादि अनन्त पर पदार्थ हैं। पर पदार्थोंको अपना मानना अथवा अच्छा–बुरा मानना वह दुःखका कारण है। पच्चीस हजार रुपये मिल जाए वह सुखका कारण नहीं है और पच्चीस हजार रुपये कोई लूट ले वह दुःखका कारण नहीं है। पर पदार्थ सुख–दुःखका कारण नहीं है। पर पदार्थका धर्म अपनेको सुखरूप या दुःखरूप मानना वह भ्रान्ति है। अन्य जीव मुझे तार सकता है—ऐसी मान्यता वह भूल है।

शरीर आदर करने योग्य नहीं है इसलिए निंद्य है, तथापि अज्ञानी शरीरको धर्मका साधन मानता है। शरीरमें सुख माने, विषयमें सुख माने, इन्द्रियोंसे सुख माने, जड़की पर्यायसे आत्माकी पर्याय माने तो दुःखी होगा। शरीर स्वस्थ हो तो धर्म होता है और रोगी हो तो धर्म नहीं होता—यह मान्यता अज्ञान है। शरीरके ऊपरकी दृष्टि वह पर्यायदृष्टि है। स्वभाव पर जिसकी दृष्टि नहीं है किन्तु राग पर दृष्टि है उसकी दृष्टि शरीर पर गए बिना नहीं रहती। शरीरसे तपस्या करेंगे और उससे धर्म होगा—ऐसा मूढ़ जीव मानते हैं। अनादिसे जड़की क्रियासे धर्म मानते हैं, इसलिए दुःख प्राप्त करेंगे ही करेंगे, सुख प्राप्त नहीं कर सकते। दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय परधर्म है। शरीरको अपना माने बिना रागको अपना नहीं मान सकते। परपदार्थ ही मैं हूँ—ऐसी बुद्धि पर्यायबुद्धिवालेको होती है। आत्मा बड़ा सरदार है, वह शरीर एवं पुण्यको अपना माने तो दुःख प्राप्त करेगा ही, उसे धर्म नहीं हो सकता। शरीर मैं नहीं हूँ, विकार मैं नहीं हूँ, मैं तो शुद्ध चैतन्य हूँ—इसप्रकार शुद्ध चैतन्य धर्मको जाने तब संसारसे तिरता है। वह संसारतारण धर्म है। उसे निजधर्म कहते हैं। कर्मको दुःख नहीं है। कर्म यदि परमाणुकी अवस्थारूप हो जाय तो कर्मको दुःख नहीं है और कर्म पृथक् हो जाए तो कर्मको सुख नहीं है। सिद्धदशाके समय सिद्धके कर्म पृथक् हो गए तो क्या कर्मको सुख होता होगा ? —नहीं, कर्मको सुख–दुःख नहीं है। यहाँ आत्माको सुख–दुःख होता है। यह आत्माके धर्मकी बात चल रही है। परसे सुख–दुःख मानना वह अधर्म है। शुद्ध चैतन्यके आश्रयसे अधर्म मिटकर धर्मदशा हो ऐसा संसारतारण धर्म जीवमें है, जड़में ऐसा धर्म नहीं है। कस्तूरी,

ऊद्दंडदर्पकरिपो विमलामलांग स्थेमन्ननंतजिदनंत सुखांबुराशे,
दुष्कर्मकल्मषविवर्जित धर्मनाथ त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं। ६ ।

हीरा आदि पुद्गलोंमें ऐसा धर्म नहीं है। परसे सुख–दुःख माननेरूप अधर्मसे छूटें और शान्ति प्रकट हो उसे संसारतारण धर्म कहते हैं। शिष्यने प्रश्न किया था कि जीवमें ज्ञान, दर्शनको निजधर्म कहते हो तो सर्व द्रव्योंके स्वभावको निजधर्म कहो न ? उसका स्पष्टीकरण किया कि आत्मा दुःखसे बच जाए और संसारसे तिर जाए ऐसा तारणधर्म आत्मामें है। इसलिए उसे निजधर्म कहते हैं।

(२) सजीवधर्म :—आत्मा अपने चेतनाप्राणसे जीवित है। जानना–देखना वह जीवका स्वभाव है, वह स्वजीवका धर्म है, इसलिए उसे निजधर्म कहते हैं। शरीर मैं नहीं हूँ, राग–द्वेष एवं अल्पज्ञता मेरा स्वरूप नहीं है, मैं तो परिपूर्ण ज्ञाता हूँ। सजीव अर्थात् जागृत धर्म चेतनायुक्त है। राग–द्वेष हों उनको भी जाने ऐसा धर्म है। ज्ञातृत्वकी अधिकता और राग–द्वेषकी मन्दता होनेपर सजीव धर्म प्रकट होता है। अहो ! राग–द्वेष, पुण्य–पापको ज्ञानकी अधिकतासे मैं जानता हूँ, शरीरकी क्रिया मैं नहीं करता, उन सब क्रियाओंको मैं जानता हूँ, —ऐसा जागृतधर्म जीवमें है। चैतन्य जागृतधर्म जिसे प्रकट हुआ है ऐसे साधकको निर्बलतासे राग हो आता है और परके ऊपर लक्ष जाता है उस रागको धर्म नहीं कहते। मैं तो निर्मलानन्द हूँ—ऐसे शुद्ध चैतन्यके लक्षसे विकारसे बच गया वह तारणधर्म है और दूसरा धर्म जागृत धर्म है। शरीरादि एवं विकारादिका ज्ञाता हूँ। इस प्रकार अनन्त धर्मोंको जानकर जो स्वमें एकाग्र हो उसे सजीवधर्म प्रकट होता है। यह धर्म अजीव पदार्थोंमें नहीं होता।

(३) प्रकाशधर्म :—मैं त्रिकाल ज्ञानानन्द हूँ—ऐसा जाने और ज्ञाता–दृष्टा स्वभावमें रहे उसे प्रकाशधर्म कहते हैं। वह धर्म जीवमें होता है। स्वयं अपने धर्मको जाने और परके धर्मको भी जाने वह प्रकाशधर्म है। मैं ज्ञाता हूँ, शरीरादि तथा राग–द्वेषको जाननेवाला हूँ, परका कर्ता नहीं हूँ, मैं तो स्व–परका ज्ञाता हूँ। —ऐसे प्रकाशधर्मको निजधर्म कहते हैं। आत्मा स्व–परका ज्ञाता है। व्यवहार रत्नत्रयको परज्ञेयरूप और स्वयंको स्वज्ञेयरूप जानूँ—इसप्रकार यथार्थ ज्ञान होनेसे अंतरमें स्थिर हुआ वह धर्म है।

(४) परमधर्म :—आत्माने सर्व धर्मोंको प्रकट जाना। जड़को अपने धर्मकी खबर नहीं है। परमाणुमें यह धर्म है, धर्मद्रव्यमें यह धर्म है—ऐसा आत्मा जानता है। तथा यह राग हुआ, यह द्वेष हुआ–उस सबको ज्ञान जानता है, इसलिए ज्ञान आत्माका उत्कृष्ट धर्म है। पाँच द्रव्य जड़ हैं—ऐसी घोषणा आत्माने की है। —इसप्रकार सर्व पदार्थोंके स्वभावको

देवामरीकुसुमसन्निभ शांतिनाथ कुंथोदयागुणविभूषणभूषितांग,
देवाधिदेव भगवन्नरतीर्थनाथ त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं।७।

प्रकट किया। ऐसा उत्कृष्ट धर्म जीवमें होता है, जड़में नहीं होता। इसलिए परमधर्म निजधर्म है।

(५) हितधर्म :—मेरा आत्मा चिदानन्द स्वरूप है, उसकी श्रद्धा ही हितकारी है। रुपया–पैसा आदिमें हित न मानकर अपनेसे हित होता है—ऐसा माने उसे हितधर्म होता है। हितधर्म जीवकी पर्यायमें रहता है। व्यवहारसे या निमित्तसे हित होता है ऐसा मानना वह मिथ्याभाव है। अपने निजरूपसे शान्ति होती है—ऐसी प्रतीति, ज्ञान और रमणताको हितधर्म कहते हैं। वह जीवका निजधर्म है। इसमें ज्ञानक्रिया आती है, और मिथ्याक्रियाका निषेध होता है। हितरूप दशा जीवमें होती है, परमाणुमें हित–अहित नहीं है। गेहूँके आटेको घीमे सेकनेसे हलुवा बने तो उस आटेके परमाणुओंका कोई हित–अहित होता होगा ? नहीं; जड़में हितपना नहीं है। आत्मा अनन्त ज्ञानस्वरूप है—ऐसी श्रद्धा हितरूप है। अज्ञानी परसे हित–सुख मानता था वह अहितरूप था। सच्ची श्रद्धासे हित होता है। बुरे परमाणु पलटकर अच्छे हो जाए तब भी परमाणुमें हित नहीं है। आत्मामें हितरूप धर्म है। जो व्यवहारका राग आता है, दया–दानादि एवं काम–क्रोधादिके परिणाम उठते हैं वे अहितरूप हैं; स्वयं त्रैकालिक ज्ञानस्वरूप है, उसकी श्रद्धासे हितरूप धर्म प्रकट होता है। लोग कहते हैं कि हम परका हित कर सकते हैं, अच्छी जान–पहिचान हो अथवा अच्छे सगे–सम्बन्धी मिलें तो हित होता है—वह सब मान्यता भ्रम है। हितधर्म अपनेमें है। ज्ञानानन्दस्वभाव हितकारी है। अपनी पर्यायमें होनेवाला शुभराग भी हितकारी नहीं है, तो फिर परपदार्थोंको हितकारी कैसे कहा जाएगा ? —नहीं कहा जा सकता।

(६) असाधारणधर्म :—आत्माके ज्ञान, दर्शन, सुख अन्य द्रव्योंमें नहीं हैं, इसलिए असाधारण धर्म आत्मामें है—उसीप्रकार एक जीवके ज्ञान, दर्शन, आनन्दादि अन्य जीवमें नहीं हैं।—ऐसा असाधारण धर्म जीवमें है, उसे निजधर्म कहते हैं।

लोगोंने सत्य बात सुनी नहीं है, बाह्य क्रियाकाण्डमें धर्म मान रखा है। एक हीरेको पेटीमें सुरक्षित रखा हो और ऊपरसे फटे–पुराने कपड़े रजाई–गद्दे आदि हों तो वहाँ उनके नीचे रखा हुआ हीरा दिखाईं नहीं देता। बाहरसे पुराने कपड़े दिखाई देते हैं। उसीप्रकार शरीर, मन, वाणी आदि तो फटे–पुराने कपड़ोंके समान हैं; पेटीमें रखे हुए हीरेकी भाँति आत्मा उनमें सुरक्षित रखा है, उसे देखे–पहिचाने तो धर्म हो सकता है। फटे–पुराने कपड़ोंको देखनेसे हीरा हाथ नहीं आ सकता। उसीप्रकार बाह्यक्रिया काण्डसे आत्मारूपी हीरा हाथ नहीं आ सकता; अन्तर्मुख होकर आत्माको पहिचाने तो उसकी प्राप्ति होगी—धर्म होगा। (क्रमशः) ✻

मुक्तिका मार्ग

(सत्तास्वरूप पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन)

(प्रवचन : २)

❀ प्रयोजनभूत तत्त्वोंका दिग्दर्शन ❀

जिनधर्मको समझनेवाले और समझानेवाले सच्चे गुरु कैसे होते हैं? यह जानना चाहिए। जिसने बहिरंगमें साधुका वेष धारण कर लिया हो और बाह्यक्रियाओंका पालन करता हो, किन्तु अन्तरंगमें तत्त्व–श्रद्धान विपरीत हो तो उसमें गुरुत्वकी योग्यता नहीं, वह कुगुरु है। रत्नत्रयधारक वीतरागी दिगम्बर मुनि ही सच्चे गुरु है।

(९-११) धर्म-अधर्म-कुधर्म :— धर्म वस्तुका स्वभाव है, वह कहीं बाहरसे नहीं आता। जिसमें धर्मकी कोई खबर ही न हो, वह अधर्म है। अथवा धर्मकी जिसमें कोई रुचि ही न हो वह अधर्म है। धर्म तो वस्तुका स्वभाव है, आत्माका वीतरागभाव धर्म है। वह कोई साधारण नहीं है। चार ज्ञानके धारी गणधरदेव और इन्द्र चक्रवर्ती इत्यादि महान व्यक्ति जिसका आदर करते हैं ऐसा जैन धर्म है, वह ऐरे गैरे लोग कहते हैं ऐसा साधारण नहीं है। धर्म तो अपूर्व वस्तु है। धर्मके नाम पर बहुतसे लोग उपदेश करते हैं; वे कहते हैं कि खूब पुण्य करो, उससे धर्म होगा। पुण्य कर करके पुण्यका समुद्र उछाल दो, उससे पुण्य फटकरके उसमेंसे धर्म प्रकट होगा; उसका अर्थ यह हुआ कि विषको पीते पीते अमृतका स्वाद आ जायगा। ऐसा कहनेवाले सच्चे वीतरागी धर्मका स्वरूप नहीं समझे हैं। पुण्य तो बन्धभाव है, जिस भावसे पराधीनता होती है, जिससे बन्धन होता है उस भावसे स्वाधीनतारूपी धर्म कैसे हो सकता है? और वह मोक्षका साधन कैसे हो सकता है? धर्मके स्वरूपसे जो विपरीत मान्यता है वह कुधर्म है। जहाँ पर हित और अहितका किंचित्मात्र भी विचार नहीं है और सच्चे मार्गकी ओर कोई रुचि ही नहीं है, वह अधर्म है।

(१२-१३) हेय-उपादेय :— कौन कौनसे तत्त्व ग्रहण करने योग्य हैं और कौन कौनसे त्याग करने योग्य हैं इसका निर्णय करना चाहिए। मोक्षके कारणरूप तत्त्व उपादेय हैं, बन्धके कारणरूप रागादि भाव सभी हेय हैं।

यन्मोहमल्लमदभंजन मल्लिनाथ क्षेमंकरावितथ शासन सुव्रताख्य,
यतसंपदा प्रशमितो नमिनामधेय त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातं।८।

सच्चे देव-गुरु और धर्मका संशय रहित ठीक ठीक निर्णय करना चाहिए। अज्ञानता बचाव नहीं, किन्तु दोष है। लोक कहते हैं कि ''अन्धेकी गायका भगवान रखवाला'' किन्तु यह बात यहाँ पर धर्ममें नहीं चल सकती। यहाँ तो जन्म-मरणको मिटानेकी बात है। परम सत्यधर्ममें अन्ध-श्रद्धासे काम नहीं चल सकता। यह तो मिथ्यात्व रागादिदोष रहित स्वरूपमार्ग है, अनन्त तीर्थंकरोंका मार्ग हैं, उसमें प्रयोजनभूत तत्त्वकी श्रद्धामें किंचित् मात्र भी विपरीतता नहीं चल सकती।

(१४-१६) तत्त्व-अतत्त्व-कुतत्त्व :—सर्वज्ञ भगवान द्वारा कहे गये नव तत्त्वोंका स्वरूप क्या है ? तत्त्वसे विपरीत क्या है ? अज्ञानियोंके द्वारा माना गया तत्त्वका स्वरूप जो कुतत्त्व है वह क्या है ? केवल झूठी बातोंसे कल्पना द्वारा दूसरोंका माना हुआ कुतत्त्व क्या है ? इस सबका यथार्थ निर्णय आगमके द्वारा करना चाहिए।

(१७-१६) मार्ग-कुमार्ग-अमार्ग :-सर्वज्ञ भगवानके द्वारा कहा गया मोक्षका मार्ग क्या है ? उससे विपरीत कुमार्ग क्या है ? और जहाँ पर हिताहितका बिलकुल विचार ही नहीं है, मार्गकी ओर झुकाव ही नहीं है, ऐसा अमार्ग क्या है ? यह जानना चाहिए।

प्रश्न :-अमार्गमें तो मार्गकी ओर झुकाव ही नहीं है, तब उस अमार्गसे तो कुमार्ग ही अच्छा है न ?

उत्तर :—इन दो मार्गोंमेंसे एक भी मार्ग ठीक नहीं है। जहाँ सत्य समझमें नहीं आता और असत्यको घुसेड़ दिया जाय तो उस मार्गको ठीक कैसे कहा जायगा ? कुमार्ग और अमार्ग दोनों ही खराब हैं। वीतरागी जिनमार्ग ही कल्याणकारी सच्चा मार्ग है।

(२०-२१) संगति-कुसंगति :-सत्संग क्या है ? और असत्संग क्या है ? तथा यथार्थ बात कहाँसे मिलती है यह बात जानना चाहिए। और विपरीत मान्यतावालोंका कुसंग छोड़ना चाहिए।

(२२-२३) संसार-मोक्ष :—संसार और मोक्ष किसे कहना ? स्त्री, मकान, लक्ष्मी, कुटुम्ब इत्यादि पर पदार्थोंमें आत्माका संसार नहीं है किन्तु शरीर मेरा है, मैं परका कुछ कर सकता हूँ, पुण्यसे मुझे लाभ होता है, पुण्य करते करते धर्म होता है इस प्रकारकी जो विपरीत मान्यता है, वह मिथ्यात्वादि भाव ही संसार है। वह आत्माकी

क्षणिक विकारी अवस्था है और पुण्य-पाप रहित स्वभावका भान तथा स्थिरता द्वारा सम्पूर्ण पवित्रतारूप जो अपनी निर्मल दशा होती है वह मोक्ष है, वह भी आत्माकी अवस्था है। मोक्ष कहीं बाहरसे नहीं आता किन्तु पुरुषार्थके द्वारा आत्मामेंसे ही परिपूर्ण शुद्ध ज्ञानानंदमय मोक्षदशा प्रकट होती है।

प्रश्न :—जैनधर्म तो सबसे निराला (बेमेल) मालूम होता है।

उत्तर :—जैनधर्म स्वभावके साथ सम्पूर्ण मेलवाला है। हाँ इस सत्यार्थ धर्मका किसी भी असत्यार्थ धर्मके साथ मेल नहीं हो सकता, इसलिए वह असत्यसे बिलकुल बेमेल है। मेल बिठानेके लिए विष और अमृतको एकसा नहीं माना जा सकता। उसी प्रकार जैनधर्मकी अन्य धर्मके साथ तुलना नहीं हो सकती। मोक्षदशामें एक आत्मा दूसरे आत्मामें मिल नहीं जाता; किन्तु पूर्ण पवित्रता प्रकट करके वह भगवान अनन्तकाल तक स्वतंत्रतया अपने स्वरूपकी शांति और अनन्त सुखका भोग करता है। जगत्का दुःख देखकर वह भगवान अवतार नहीं लेते, भगवान तो वीतराग हैं। निवृत्ति लेकर सत्समागमके द्वारा सत्का निर्णय करना चाहिए। इस तत्त्वनिर्णयके लिए प्रयोजनभूत रकम कौन कौनसी हैं? यह कहा जाता है।

(२४-२५) जीव-अजीव : जीव किसे कहते हैं? और अजीव किसे कहते हैं? इन दोनोंका लक्षणोंके द्वारा यथार्थ निर्णय करना चाहिये। लोग कहते हैं कि हाथी, चींटी, मनुष्य इत्यादि दिखते हैं वह जीव है, किन्तु हाथी इत्यादि दिखता है वह तो शरीर है–और वह अजीव है; वह शरीर छूट जाता है। वास्तवमें देखा जाय तो शरीरमें रहनेवाला जो ज्ञाता है वह जीव है। शरीर तो अजीव है। शरीर कहीं जीवके साथ नहीं आता क्योंकि वह जीवसे भिन्न वस्तु है—अजीव है। और आत्मा असंयोगी ज्ञान, आनन्दकी मूर्ति है। चैतन्यतत्त्व अमूर्त है वही जीव है।

(२६) आस्त्रव :—जो मिथ्यात्व तथा पुण्य-पापके विकारी भाव हैं वे आस्त्रवभाव हैं। व्रत, तपका विकल्प शुभ आस्त्रव है, हिंसादिक अशुभ है। आत्मभानके बिना व्रत, तप या त्याग सत्य नहीं हो सकते। बाह्य लौकिक नीति, सत्य बोलना इत्यादि तथा धर्मका बाना धारण करके जो शुभभावकी क्रिया है वह भी आस्त्रव है, विकार है, बन्धन है, वह संवर निर्जरारूप जैनधर्म नहीं है। जैनधर्म तो आत्माका वीतरागस्वरूप है उसका भान किये बिना और भानके बाद भी जो भक्ति, व्रत, पूजा इत्यादि शुभभाव करनेसे पुण्यका बंध होता है, वह शुभ आस्त्रव है वह धर्म नहीं है, संवर नहीं है। (क्रमशः)*

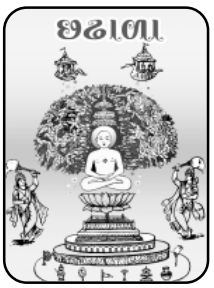

श्री छहढाला पर पूज्य गुरुदेवश्रीका प्रवचन

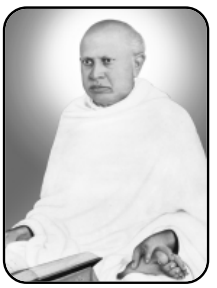

(दूसरी ढाल, गाथा-१५)

हे जीव ! मिथ्यात्वादिको छोड़कर अब आत्महितमें लग जा

अधिक काल तक मिथ्याभावोंके कारण तू संसारमें दुःखी हुआ, लेकिन हे भाई ! अब उस दुःखसे छूटनेके लिये आत्महितका मार्ग संतोंने तुझे बतलाया, इसलिये मिथ्याभावोंको रोमरोमसे छोड़ दे और हितपंथमें आत्माको जोड़–ऐसा कहते है—

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतमके हितपंथ लाग।
जगजाल-भ्रमणको देहु त्याग, अब दौलत निज आतम सुपाग॥१५॥

जीवको चार गतिके सर्व दुःखोंका कारण जो मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र उसे बताकर श्रीगुरु कहते है कि हे जीव ! ऐसे दुःखदायक मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रको तू छोड़, और सम्यग्दर्शनादि प्रकट करके आत्महितके पंथमें लग जा। अनादिसे मिथ्यात्वादि भावोंका सेवन करके दुःखी हुआ, अब तो आत्माके हितका उपाय कर !—'अब आतमके हितपंथ लाग'। इस जगतकी जालमें भटकनेका छोड़ दे और चैतन्य दौलतसे भरपूर ऐसे निजात्मामें लीन हो। कवि स्वयंको संबोधन करते कहते है कि हे दौलत ! तू स्वयंके आत्माकी आराधनामें लीन हो और संसारकी जंजालको छोड़ दे।

अहा ! जीवोंको हितपंथमें जोड़ने हेतु संतों कैसी करुणासे उपदेश देते है ! मिथ्यात्वादि भावों वह तो जगतकी जाल है, उसमें अटका हुआ जीव चार गतिमें भटकता है और दुःखी होता है। उस दुःखसे छुड़ाने और सुख प्राप्त कराने हेतु यह वीतरागविज्ञानका उपदेश श्रीगुरु देते है।

'तातैं दुःखहारी सुखकार, कहे सीख गुरु करुणाधार,'
'ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।'

भाई ! अपने कल्याणके लिये तू यह उपदेश अंगीकार कर। आत्महितके अभिलाषी मुमुक्षु जीवों गृहीत-अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रको छोड़कर और शुद्ध सम्यग्दर्शन-

ज्ञान-चारित्रको अंगीकार करके आत्म-कल्याणके मार्गमें आ जाओ; पराश्रयभावरूप इस संसारमें भटकनेका छोड़ दो, और मिथ्यात्वादि भावोंका सेवन त्याग करो। सावधान होकर आत्माको रत्नत्रयधर्मकी आराधनामें लगाओ।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी नियमसारमें कहते है कि—

''मिथ्यात्व-आदिक भावकी की जीवने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भावकी न करी कभी भी भावना॥९०॥''

अरे जीव ! अब ऐसे मिथ्यात्वादि दुःखदायी भावोंको छोड और आत्माके कल्याणके मार्गमें लग जा। अरे, मैं तो देहसे और रागसे भिन्न ज्ञानानंदस्वरूप हूँ—इस प्रकार श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव करके आत्महितमें लग जा। भाई ! ऐसा मनुष्यपना पाकर तूने आत्माको पहिचाना नहीं ? तेरे आत्माको जागृत किया की नहीं ?–या परकी चिन्तामें ही जीवन व्यतीत किया ? अरे, अभी तक आत्माको भूलकर मिथ्याभावोंका सेवन द्वारा स्वयंने स्वयंका अहित किया और उसमें कुदेव-कुगुरु-कुधर्मके सेवनसे तो आत्माका बहुत ही अहित हुआ और दुःखको भोगा। इसलिये हे जीव ! तू यथार्थ देव-गुरु-धर्मको पहिचानकर सम्यक्त्वादि भावोंको प्रकट कर–ऐसा करनेसे तेरा परमहित होगा।

अरे, बहुतके जीव तो ऐसे है कि भगवान प्ररूपित वीतराग विज्ञानको वे पहिचानते नहीं और मूढताके कारण ऐसा समझते है कि हम कुछ तत्त्वज्ञान करते है,–लेकिन उससे विपरीत कुगुरुओंके निमित्तसे विपरीत विचारमें ही शक्ति गवाकर मिथ्यात्वको पुष्ट करते है। ऐसे जीवोंको को सम्यग्दर्शन आदिकी प्राप्तिका अवकाश ही नहीं है।

अब कदाचित् अल्प विवेकबुद्धि प्रकट करे और कुदेव-कुगुरु-कुधर्मका पाससे छूटकर सच्चे वीतरागी देव-गुरु-धर्मके समीप आये, तो वहाँ भी देव-गुरु शुद्धात्माके अनुभवका जो निश्चय उपदेश देते है उसे तो वह पहिचानता नहीं, और मात्र व्यवहारश्रद्धा करके वास्तवमें अतत्त्व–श्रद्धावान ही रहता है; वैसे तो उसे मिथ्यात्वादिकी मंदता हुई है उस अपेक्षासे दुःख भी मंद है, लेकिन सम्यग्दर्शन द्वारा आत्माके आनंदका अनुभव हुए बिना दुःख कदापि मिटेगा नहीं; मंद-तीव्र होता रहता है लेकिन उसका अभाव नहीं होता है; इसलिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रके अतिरिक्त जीव दूसरा जो भी उपाय करता है वह सब मिथ्या है। यथार्थ उपाय क्या है ?–कि वीतराग-विज्ञान, अर्थात् कि सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं मांगल्यं परिकीर्तितं,
चतुर्विंशति तीर्थानां सुप्रभातं दिनेदिने।११।

अरे, जीवको स्वयं प्रत्यक्ष जो दुःखका वेदन हो रहा है वह स्वयंका दुःख भी न जाने, तो अन्यको किस प्रकार बतलायेंगे ? स्वयंका परिणाम देखने जितनी धीरज और विशुद्धता होना चाहिये। भाई ! धीरज रखकर अंतरमें विचार कि शास्त्रोंमें दुःखका जो वर्णन है ऐसा दुःख तेरे वेदनमें है कि नहीं ? अपना दुःख और दुःखके कारणोंको पहिचान; और उससे छूटने हेतु इस मनुष्यजीवनको धर्मसाधनमें लगा दे, तो तुझे मोक्षसुख मिलेगा। मोक्षसुखकी साधना मनुष्यपनेमें ही हो सकती है; लेकिन मोक्षसाधनके बदले विषयोंमें ही मनुष्यपना व्यतीत कर देगा तो पीछे पछताना पड़ेगा।

अरे, श्रीगुरु बारम्बार समझाते है लेकिन जीव सम्यक् परिणमन करता नहीं है। अंतरमें गहराईसे विचार ही करता नहीं है। भाई, निजहित कैसे हो उसका तू विचार कर। मोक्षमार्ग प्रकाशकमें पं. टोडरमल्लजी कहते है कि–''जिसका हित होनेवाला है उस जीवको ऐसा विचार आता है कि मैं कौन हूँ ? कहाँसे आकर मेरा जन्म हुआ है ? मरकर कहाँ जाऊँगा ? मेरा स्वरूप क्या है ? यह चारित्र कैसा बन रहा है ? मुझे जो यह भाव होते है उसका फल क्या आयेगा ? एवं यह जीव दुःखी हो रहा है तो उस दुःखको दूर करनेका उपाय क्या है ? इतनी बातका निर्णय करके जिससे स्वयंका हित हो वह ही करना''।—ऐसे विचारपूर्वक वह जीव उद्यमवंत होता है। अति प्रीतिपूर्वक श्रवण करके गुरुके कहे हुए वस्तुस्वरूपको स्वयंके अंतरमें बारम्बार विचार करता है; और सत्य स्वरूपका निश्चय करके उसमें उद्यमी होता है....और इस प्रकार वीतरागविज्ञान द्वारा स्वयंका कल्याण साधता है।

जिज्ञासु जीवोंके कल्याणके लिये वीतरागविज्ञानका यह उपदेश है। उसमें दुःखके कारणरूप मिथ्यात्वादिका स्वरूप पहिचानकर उसका निषेध किया है; उसमें प्रयोजन यह है कि वह मिथ्यात्वके प्रकारोंको पहिचानकर स्वयंमें कोई ऐसा दोष हो उसे दूर करके सम्यक् श्रद्धा प्रकट करना; लेकिन किसी अन्यके दोष देखकर कषाय मत करना; क्योंकि स्वयंका भला-बुरा तो स्वयंके परिणामोंसे ही होता है। स्वयंके हितके लिये सर्व प्रकारके मिथ्याभावको छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है। मिथ्यात्व वह संसारका मूल कारण है; राग-द्वेष शुभाशुभ परिणाम वह भी दुःख है, वह भी संसारका कारण है। ऐसे मिथ्यात्व और राग-द्वेषको दुःखरूप जानकर, हे जीव ! अब तो उसका सेवन छोड; और आत्माकी श्रद्धा-ज्ञान करके उसमें लीनताका उद्यम करो।

सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रतयभिनंदितं,
देवता ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने।१२।

हे चैतन्य-दौलतवाले दौलतराम ! हे आतमराम ! तू तेरे अनंतगुणनिधानकी दौलतको सम्हाल, यह सोना-चांदीकी दौलत जड़, वह तो तेरेसे पृथक् है; तेरा आत्मा केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप दौलतसे भरपूर है; उसे पहिचानकर तेरे निजनिधानको सम्हाल।—इस प्रकार ग्रंथकार कवि दौलतरामजी स्वयं स्वयंको भी सम्बोधन करते है और अन्यको भी उपदेश देते है। भाई, तुझमें केवलज्ञान और सिद्धपद प्रकट करनेका सामर्थ्य है, लेकिन स्वयंको भूलकर तू भवमें भटक रहा है। इसलिये अब तो सभी व्यर्थ बातें छोड़कर, जगतकी जंजालको छोड़कर तू आत्महितके उद्यममें लग जा, रत्नत्रयरूप मोक्षमार्गको प्रकट कर। इस मार्गका वर्णन अब आगेकी ढालमें करेंगे।

अहा ! वीतरागी संतों करुणापूर्वक कहते हैं कि हे भाई ! 'अब आतमके हितपंथ लाग।' बापु तेरा अधिक समय तो दुःखमें चला गया, अब तो सावधान होकर आत्माका हित कर। हित करनेका यह अवसर है। इस उत्तम अवसरको गँवा मत देना। राग दुःखदायक होने पर भी उसे सुखदायक मानकर सेवन किया और सम्यग्दर्शन पूर्वकका वीतरागी चारित्रधर्म आनंददायक होने पर भी उसे दुःखदायक माना–इस प्रकार बंध-मोक्षके कारणोंमें भूल की अर्थात् तत्त्वश्रद्धामें विपरीतता हुई। इस तत्त्वकी भूलरूप मिथ्यात्वको छोड़कर, यथार्थ तत्त्वको पहिचानकर सम्यग्दर्शन प्रकट करके अंतरमें मोक्षमार्ग प्रकट करना; इसलिये हे आत्मा ! तू सावधान हो जा।

सच्चा जैन वीतरागमार्गके अतिरिक्त अन्य मार्गको मानना वह तो गृहीतमिथ्यात्व है– उसमें तीव्र विपरीतता है; और जैनमार्गमें आकर भी, यदि जो स्वयं अंतरमें सर्वज्ञदेवके कहे हुए नव तत्त्वोंका निर्णय करके आत्माका अनुभव न करे तो अनादिके मिथ्यात्वका नाश होता नहीं है। इसलिये इस अधिकारमें सात तत्त्वोंकी श्रद्धामें जीवकी भूल बताकर उसे छोड़नेका उपदेश दिया है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आनंददायक है और मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र महा दुःखदायक है; इसलिये उन दोनोंको यथार्थ पहिचानकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका ग्रहण करो और मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्रका त्याग करो।

ज्ञानी करुणासे उपदेश करते है कि हे भाई ! हे भव्य ! यहाँ संसारमें जो दुःखोंका वर्णन किया तथा उसके कारणरूप मिथ्यात्वादि भावों बतलाये, उसका अनुभव तुझे होता है कि नहीं ? तू जो उपाय अभी तक करता था उसका मिथ्यापना दर्शाया वह वैसा है कि

(शेष देखे पृष्ठ ३० पर)

सुप्रभातं तवैकस्य वृषभस्य महातमनः,
येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्त्व सुखावहं।१३।

जिस ओरकी रुचि, उसी ओरकी रटन

एक की एक बात पुनः पुनः (अदल बदलकर) कही जा रही है, किन्तु रुचिवान जीवको उकताहट नहीं होती। नाटकका रुचिवान मनुष्य नाटकमें 'वन्स मोर' कहकर अपनी रुचिवाली वस्तुको बारम्बार देखता है। इसी प्रकार जिन भव्य जीवोंको आत्मरुचि हुई है और जो आत्मकल्याण करनेको निकले हैं, वे बारम्बार रुचिपूर्वक प्रति समय खाते-पीते, चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, बोलते-विचारते हुए निरन्तर श्रुतका ही अवलम्बन स्वभावके लक्ष्यसे करते हैं, उसमें किसी काल या क्षेत्रकी मर्यादा नहीं करते। उन्हें श्रुतज्ञानकी रुचि और जिज्ञासा ऐसी जम गई है कि वह कभी भी नहीं हटती। ऐसा नहीं कहा है कि अमुक समय तक अवलम्बन करना चाहिये और फिर छोड़ देना चाहिये, किन्तु श्रुतज्ञानके अवलम्बनसे आत्माका निर्णय करनेको कहा है। जिसे सच्ची तत्त्वकी रुचि हुई है, वह दूसरे सब कार्योंकी प्रीतिको गौण कर देता है।

प्रश्न :–तब क्या सत् की प्रीति होती है; इसलिये खाना-पीना और व्यापार-धन्धा सब छोड़ देना चाहिये और श्रुतज्ञानको सुनते ही रहना चाहिये ? किन्तु उसे सुनकर भी क्या करना है ?

उत्तर :–सत्की प्रीति होती है; इसलिये तत्काल ही खाना-पीना सब छूट जाये–ऐसा नियम नहीं है, किन्तु उस ओरकी रुचि तो अवश्य कम हो ही जाती है। परमेंसे सुखबुद्धि उड़ जाये और सब में एक आत्मा ही आगे रहे। उसका अर्थ यह है कि निरन्तर आत्मा ही की तीव्राकांक्षा और चाह होती है; ऐसा नहीं कहा है कि मात्र श्रुतज्ञानको सुना ही करे, किन्तु श्रुतज्ञानके द्वारा आत्माका निर्णय करना चाहिये। श्रुतावलम्बनकी धुन लगने पर, वहाँ देव-गुरु-शास्त्र, धर्म, निश्चय, व्यवहार, इत्यादि अनेक प्रकारसे बातें आती हैं, उन सब प्रकारोंको जानकर, एक ज्ञानस्वभाव आत्माका निश्चय करना चाहिये। उसमें भगवान कैसे हैं, उनके शास्त्र कैसे हैं और वे क्या कहते हैं–इस सबका अवलम्बन यह निर्णय कराता है कि तू ज्ञान है, आत्मा ज्ञानस्वरूपी ही है, ज्ञानके अतिरिक्त वह दूसरा कुछ नहीं कर सकता।

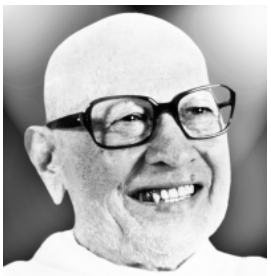

युवा-विभाग

(इस विभागके अंतर्गत मुमुक्षुओंकी पूज्य गुरुदेवश्रीके साथ रात्रिके समय चर्चा हुई, वह दी जा रही है।)

प्रश्न—आत्मा परोक्ष है तो जाननेमें कैसे आवे?

उत्तर—आत्मा प्रत्यक्ष ही है। पर्याय अन्तर्मुख हो तो प्रत्यक्ष जाननेमें आता है। बहिर्मुख पर्यायवालेको आत्मा प्रत्यक्ष नहीं लगता–नहीं दिखता, परंतु है वह प्रत्यक्ष ही, क्योंकि उसके सन्मुख ढलकर-झूककर देखे तो अवश्य जाननेमें आता है।

प्रश्न—नियमसारजी शास्त्रमें ऐसा कहा कि आत्मा निरन्तर सुलभ है। इसका क्या अर्थ है?

उत्तर—नियमसार कलश १७६में कहा है कि आत्मा निरन्तर सुलभ है। आहाहा! आत्मा निरन्तर सुलभ है। वर्तमान सुलभ है–इसका तात्पर्य यह कि आत्मा वर्तमानमें ही है, उसका वर्तमानमें आश्रय ले? भूतकालमें था और भविष्यमें रहेगा–ऐसा त्रिकाल लेने पर उसमें कालकी अपेक्षा आती है। इसलिये वर्तमानमें ही त्रिकाली पूर्णानन्दनाथ पड़ा है, उसका वर्तमानमें ही आश्रय लेना योग्य है–ऐसा कहते हैं।

प्रश्न—स्वद्रव्य आदरणीय है, उसी प्रकार उसकी भावनारूप निर्मलपर्यायको भी आदरणीय कहें?

उत्तर—हाँ, राग हेय है, उसकी अपेक्षासे निर्मल पर्यायको आदरणीय कहा जाता है। द्रव्यकी अपेक्षासे पर्याय व्यवहार है, अतः आश्रय योग्य नहीं होनेसे उसे हेय कहा जाता है। क्षणिकपर्यायको द्रव्यकी अपेक्षा हेय कहा, परंतु रागकी अपेक्षासे क्षायिकभावको आदरणीय कहा गया है।

प्रश्न—इष्टोपदेशमें आता है कि जीव और देहको जुदा जानना ही बारह अंगका सार है–इसका क्या अर्थ है?

उत्तर—जीव और देहको–पुद्गलको जुदा जाने अर्थात् विकार भी आत्माके स्वभावसे जुदा है, यह भी उसमें गर्भित है। पुद्गलसे और विकारसे भिन्न आत्माके स्वभावको जानना, अनुभव करना–वहीं द्वादशांगका सार है। द्वादशांगमें आत्मानुभूति करनेको कहा गया है।

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषां,
अज्ञानतिमिरांधानां नितयमस्तमितोरविः।१४।

प्रश्न—भेदज्ञानका क्या अर्थ है ?

उत्तर—आत्मा उपयोगस्वरूप है, रागादि परभावोंसे भिन्न है–इस प्रकार उपयोग और रागादिको सर्वप्रकारसे अत्यन्त भिन्न जानकर, रागसे भिन्नत्वरूप और उपयोगसे एकत्वरूप ज्ञानका परिणमन भेदज्ञान है।

प्रश्न—भेदज्ञानी क्या करता है ?

उत्तर—भेदज्ञानी धर्मात्मा अपने भेदज्ञानकी शक्तिसे निज महिमामें लीन होता है। वह रागरूप किंचितमात्र भी नहीं परिणमता, ज्ञानरूप ही रहता है।

प्रश्न—ज्ञानीको जैसे शरीर भिन्न दिखता है, वैसे रागादि भिन्न दिखते है क्या ?

उत्तर—ज्ञानीको रागादि शरीरके जैसे ही भिन्न दिखते हैं, अत्यन्त भिन्न दिखते हैं।

प्रश्न—शरीरको आत्मासे भिन्न कहा, यह तो ठीक है, जँचता भी है; परंतु राग आत्मासे भिन्न है, यह गले उतरना कठिन लगता है ?

उत्तर—चैतन्यमें अंदर गया अर्थात् पुण्य-पापभावका साक्षी हो गया, तब वह भावसे भिन्न है, कालसे भिन्न है और क्षेत्रसे भी भिन्न है, वस्तु भिन्न ही है, आत्मा तो अकेला ज्ञानघन चैतन्यपुंज ही है।

प्रश्न—सुख-दुःख की कल्पना जीवमें होती हुई दिखाई देती है, तथापि समयसार में उस कल्पनाको पुद्गलका परिणाम क्यों कहा ?

उत्तर—सुख-दुःख, हर्ष-शोक आदि जीवकी पर्यायमें होते हैं, परंतु जिसको द्रव्यदृष्टि प्रकट हुई है–ऐसे ज्ञानी जीवकी दृष्टि तो द्रव्यके उपर पड़ी है, उसकी दृष्टि आत्माके आनंदमें है। अतः वह जीव सुख-दुःखकी कल्पनाको कैसे भोगे ? इसलिये ज्ञानीके सुख-दुःखके राग परिणामको पुद्गलका परिणाम कहा है, और इस सुख-दुःखके परिणामके आदि, मध्य और अंतमें अन्तव्यापक होकर पुद्गलद्रव्य उसको ग्रहण करता है, भगवान आत्मा उसको ग्रहण करता अथवा भोगता नहीं है। आत्माका स्वरूप तो ज्ञायक है, कल्पनाके सुख-दुःखको भोगना उसका स्वरूप नहीं है। पर्यायकी सुख-दुःखकी कल्पना होती है, किन्तु दृष्टिवंत ज्ञानी उसका कर्ताभोक्ता नहीं है।

सुप्रभातं जिनेंद्रस्य वीरः कमललोचनः,
येन कर्माटवी दग्धा शुक्लध्यानोग्रवह्निना।१५।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्रीकी गुरुभक्तिपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वचर्चा

प्रश्न :— *विकल्पात्मक भावभासनको यथार्थ कहा जायगा ?*

समाधान :—विकल्पात्मक भावभासन बुद्धिसे होता है, उसे व्यवहारसे यथार्थ कहा जाता है; किन्तु असलमें यथार्थ तो चैतन्यको ग्रहण करे तभी कहा जाता है। बुद्धिसे निर्णय करे उसे व्यवहारसे कहा जाता है, परन्तु वास्तविकरूपसे स्वयं अपनेको ग्रहण करे तब वह यथार्थ कहलाता है।

प्रश्न :— *ज्ञान लक्षणके भेदमें न रुककर 'मैं ज्ञायक हूँ'—इसप्रकार क्या आप सीधा ज्ञायकको ग्रहण करनेके लिये कहते हैं ?*

समाधान :—ज्ञानकी जो पर्याय प्रतिक्षण पलटती है वह मैं नहीं हूँ, मैं तो त्रिकाल जाननेवाला हूँ। स्वयं मेरा अस्तित्व ही ज्ञायक है; मेरा अस्तित्व स्वयं ज्ञायकतासे ही रचित है। यह प्रतिक्षण जो फेरफार होता है वह मेरा मूल स्वरूप नहीं है, स्वयं ज्ञायकतासे रचित मेरा अस्तित्व अखंड है, इसप्रकार ज्ञायकको ग्रहण करना। यह जो क्षणवर्ती ज्ञान–ज्ञान दिखाई देता है वह मेरा मूल 'असली' अस्तित्व नहीं है; पलटती है वह तो पर्याय है। अनन्ततासे भरपूर, अनन्त ज्ञायकता द्वारा रचित, अनन्तानन्त अगाध शक्तियोंसे भरा हुआ जो ज्ञायकताका अस्तित्व है सो मैं हूँ। ऐसे ग्रहण होना चाहिये।

अनन्तता उसे दिखायी नहीं देती, परन्तु उसे अंतरमें इतनी महिमा आ जाती है कि मेरा अस्तित्व अगाध शक्तियोंसे भरा हुआ है। मेरा अस्तित्व रिक्त नहीं है, परन्तु अनन्त शक्तियोंसे भरपूर ऐसी मेरी ज्ञायकता है।—ऐसी महिमापूर्वक अंतरमें ज्ञायकता ग्रहण होनी चाहिये।

प्रश्न :— *प्रथम ग्रहण तो ज्ञानी पुरुषके वचनों द्वारा करना पड़ता है न ?*

समाधान :—ज्ञानीके वचन उसमें निमित्त होते हैं। अनादिकालसे स्वयं जाना नहीं है; उसमें प्रथम देव या गुरुके वचन कानोंमें पड़ते हैं, फिर अपनी अंतरकी तैयारी होती है तब चैतन्यके कोई अपूर्व संस्कार तथा देशनालब्धि प्रकट होती है। ज्ञानीके वचन निमित्त होते हैं,

सुप्रभातं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलं, त्रैलोक्यहितकर्तृणां जिनानामेव शासनं।१६।	सुप्रभात-स्तोत्र समाप्त

परन्तु अंतरकी तैयारी तो स्वयंको करनी पड़ती है, पुरुषार्थ अपनेको करना पड़ता है।

प्रश्न :— *भावमें ऐसा आता है कि हे गुरुदेव ! हम कुछ जानते नहीं थे; आपने ही मार्ग बतलाया.....तथा दूसरी ओर ऐसा आता है कोई किसीका कुछ कर नहीं सकता; तो क्या समझना ?*

समाधान :—गुरुदेवने (मेरा कार्य) कर दिया ऐसा कहनेमें आये परन्तु करना तो स्वयंको पड़ता है। अनंतकालमें स्वयं अपने दोषसे भटका है। भगवान्को या गुरुको पहिचाना नहीं; मिले फिर भी पहिचान नहीं पाया। इस पंचमकालमें गुरु मिले, उनकी वाणी मिली , उसे स्वयं ग्रहण करके पुरुषार्थ करे तो जागृत होता है। गुरुदेवकी वाणी तो सबके लिये प्रबल निमित्त है, परन्तु तैयारी तो स्वयंको करनी रहती है। गुरुदेवका तो अमाप उपकार है, परन्तु पुरुषार्थ स्वयंको करना रहता है। गुरुदेव भी ऐसा ही कहते थे कि तू कर तो होगा। अपनी स्वाधीनतासे होता है। तेरा द्रव्य स्वतंत्र है; सब द्रव्य स्वतंत्र हैं। तू अपना पुरुषार्थ कर, परन्तु पुरुषार्थ करनेवाला गुरुका उपकार माने बिना नहीं रहता; उसे उपकारबुद्धि आये बिना नहीं रहती।

प्रश्न :— *करे स्वयं, फिर भी उपकार मानना ?*

समाधान :—स्वयं करे फिर भी कहे कि हे गुरुदेव ! आपने (मेरा उद्धार) कर दिया। आचार्य भी शास्त्रमें इसीप्रकार कहते हैं कि परमगुरुके अनुग्रहसे हमारा निजवैभव प्रकट हुआ है। कुंदकुंदाचार्यके लिये श्री देवसेन आचार्य जैसे कहते हैं कि आप वाणी न लाये होते तो हम जैसे पामरोंका क्या होता ? उसी प्रकारसे ऐसे गुरु पंचमकालमें पधारे तो सबका उपकार हुआ; नहीं तो क्या होता ? गुरुदेव पधारे तो सबको मार्ग स्पष्ट करके बतलाया।

प्रश्न :— *ज्ञानीके प्रति भक्ति किस प्रकार प्रकट होती है ?*

समाधान :—मात्र बाहरसे भक्ति करनी ऐसे नहीं है, किन्तु स्वयंको भीतरसे उनकी महिमा आये वह ज्ञानीके प्रति भक्ति है। अंतरमेंसे बहुमान आना चाहिये; ज्ञानीके वचनों पर सभी प्रकारसे बहुमान आना चाहिये। ऐसी अर्पणता आये कि गुरुदेव कहते हैं सो बराबर है। उन्होंने जो मार्ग कहा है वह बराबर है। ऐसे अपनेसे निश्चय करके बहुमान आना चाहिये। स्वयं विचार करके निर्णय करे यह सत्पुरुष हैं और वे अपूर्व मार्ग बतला रहे हैं। पश्चात् वे कहते हैं वही ठीक है, ऐसे बहुमान–भक्ति अपने अंतरमेंसे आती है।

बाल विभाग

दृढ़ताके धनी राजा जय

राजा श्रेयांसके भाई राजा सोमके पुत्र राजा जयकुमारकी कथा जगप्रसिद्ध है, प्राचीनकालमें राजाओंकी अनेकों रानियाँ हुआ करती थीं, अतः राजा जयकुमारकी भी अनेकों राजकुमारियोंके साथ शादी करनेका प्रस्ताव आया; परन्तु उन्होंने एक शादी करनेके बाद दूसरी शादी नहीं करनेकी प्रतिज्ञा ले ली, जिसका उन्होंने दृढ़तासे पालन किया, जो संसारमें एक अनूठा उदाहरण बन गया।

राजा जयकुमारकी सुलोचना नामकी एक सद्गुणी पत्नी थी। स्त्री सम्बन्धी परिग्रह परिमाणमें उन्हें एक मात्र रानी सुलोचनाके अलावा अन्य सभी स्त्रियोंका त्याग था।

एक बार इन्द्रसभामें सौधर्म इन्द्रने उनके इस व्रतकी प्रशंसा की, वह सुनकर एक देव उनकी परीक्षा करने आया। जिस समय वे कैलास पर्वतकी यात्राके लिये गये थे, उस समय उसने विद्याधरीका उत्तम रूप धारण करके जयकुमारके सन्मुख अपने विवाहका प्रस्ताव रखा, उन्हें बहुत ललचाया और हाव-भाव प्रदर्शित करके अपने साथ क्रीड़ा करनेके लिये कहा।

परंतु जयकुमार जिसका नाम ! वह विषयोंसे पराजित कैसे हो ? वे थोड़े भी नहीं ललचायें; उन्होंने उस विद्याधरीको विरक्तभावसे उलटे उपदेश दिया, समझाया–''हे माता ! यह तुम्हें शोभा नहीं देता। मेरा एक पत्नीव्रत है, इसलिये सुलोचनाके सिवाय अन्य स्त्रियोंका मुझे त्याग है। हे देवी ! तू भी विषय-वासनाके इस दुष्ट परिणामको छोड और शीलवती होकर पर-पुरुषके साथ रमण करनेकी अभिलाषाका त्याग कर।''

ऐसा कहकर जयकुमार तो हृदयमें तीर्थंकर भगवंतोंका स्मरण करके ध्यानमें खड़े रहे। देवीने नाना प्रकारके अनेक उपाय किये, फिर भी जयकुमार डिगे नहीं। व्रतमें उनकी दृढ़ता देखकर अन्तमें देव प्रसन्न हुआ और प्रकट होकर उनकी स्तुति करने लगा तथा उनका सन्मान किया। कुछ समय बाद जयकुमार संसारसे विरक्त हुए और राजपाट छोड़कर मुनिदीक्षा अंगीकार की और आत्मध्यानसे केवलज्ञान प्रकट करके मोक्ष गये।

जो बुद्धिमान अर्थात् सम्यग्दृष्टि श्रावक लोभ कषाय दूर करके संतोषपूर्वक परिग्रहकी मर्यादाका नियम करता है, उसे पाँचवाँ परिग्रह-परिमाण व्रत होता है। गृहस्थोंको पापका

आरम्भ घटानेके लिये परिग्रहका परिमाण करना चाहिये। खेती, घर, स्त्री, वस्त्र आदि सभी ममत्व बढानेवाले हैं तथा उससे त्रस-स्थावर अनेक जीवोंकी हिंसा होती है, इसलिये हे भव्य ! परिग्रहकी ममता घटाकर उसकी मर्यादाका नियम करना चाहिये यह व्रत संतोषरूपी धनको बढ़ानेवाला है एवं अहिंसा पालनमें हेतुभूत है।

लोभ में आकुलता है और संतोषमें सुख है। संतोषी जीव तीन लोक में कहीं भी हो उसे सर्वत्र सुख प्राप्त होता जाता है। जिस प्रकार माँगनेवालेको कभी अधिक धन नहीं मिलता, भिखारीको तो क्या मिले ? उसी प्रकार लोभसे अधिक द्रव्यकी इच्छा करनेवाले लोभीको इसकी प्राप्ति नहीं होती और निस्पृह जीवोंको तो बिना माँगे ही धनका ढेर मिल जाता है।

संतोष धारण करनेवालेको धन वगैरह पुण्य योगसे स्वयमेव आ जाता है; क्योंकि लक्ष्मी पुण्यके उदय अनुसार आती-जाती है, इसलिये हे जीव ! तू लोभ-तृष्णा छोड़कर संतोषरूप अमृतका पान कर। शक्ति अनुसार दान देने योग्य पदार्थका दान कर और त्याग करनेयोग्य वस्तुका त्याग कर। लक्ष्मी पुण्यसे आती है, बिना पुण्यके इच्छा करने मात्रसे नहीं आती।

जिसने चैतन्यकी निज संपदाको जानकर बाहरकी संपदाका मोह छोड़ा है–ऐसे धर्मात्माको ही लोकमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, इन्द्र आदि पदोंकी विभूति मिलती है।

जो बुद्धिमान श्रावक परिग्रहको एकदेश छोड़कर परिमाण करता है, मानों उसकी परीक्षा करनेके लिये बहुत लक्ष्मी स्वयं उसके घर आती है। जिस प्रकार सूर्यसे शीतलता नहीं मिलती, उसी प्रकार ममतारूप परिग्रह भावसे जीवको कभी भी शांति नहीं मिलती।

जिस प्रकार पशुको नग्न रहने पर भी ममत्वरूप परिग्रहके त्याग बिना शांति या पुण्य नहीं मिलता, उसी प्रकार जिसे परिग्रहकी मर्यादाका कोई नियम नहीं–ऐसा धर्मरहित जीव शांति या पुण्य नहीं पाता। परिग्रहकी तीव्र मूर्च्छासे वह पाप बांधकर दुर्गतिमें रखड़ता है। धर्मके बगीचेको खा जानेवाला विषयासक्त मन रूपी हाथी नियमरूप अंकुशसे वशमें रहता है। इसलिये हे जीव ! तुम संतोष पानेके लिये परिग्रह-परिमाणव्रतका नियम करो।

परिग्रहके लोभ वश जीव न्याय-मार्ग छोड़कर अनेक पाप करता है, दया रहित होकर झूठ बोलता है, चोरी करता है, आर्तध्यान करता है। तीव्र लोभी मनुष्यको देव-गुरु-धर्मका और पुण्य-पापका विवेक नहीं रहता, वह गुण-अवगुणको नहीं पहिचानता। लोभ वश वह

गुणीजनोंका अनादर और दुर्गुणीजनोंका आदर करता है, देश-परदेश घूमता है, माया-कपट करता है।

लोभी पुरुषकी आशा सम्पूर्ण संसारमें ऐसी फैल जाती है कि यदि जगतका सम्पूर्ण धन उसे मिल जाय, फिर भी उसका लोभ शांत नहीं होता। जिस जीवके विषयोंमें सुखबुद्धि छूटकर चैतन्यसुखका स्वाद आया हो, यथार्थमें तो उसी जीवके परिग्रहका लोभ छूटता है।

अरे, धनकी प्राप्ति अनेक दुःखोंको देती है, प्राप्त धनकी रक्षा करनेमें भी दुःख ही होता है और जब धन चला जाता है, तब भी दुःख ही देता है। समस्त पर पदार्थोंकी स्थिति भी इसी प्रकारकी है। अतः सर्वथा दुःखके कारणभूत धनादि पर पदार्थोंकी ममताको धिक्कार है।

हे जीव ! तू धनका लोभ घटानेके लिये धर्म-प्रभावनार्थ उसका दान कर...यही उत्तम मार्ग है। दान बिना गृहस्थपना तो परिग्रहके भारसे दुःख ही देनेवाला है। लोभ तो पापको बढ़ानेवाला होनेसे निंद्य है और दानादि शुभ कार्य श्रावकके लिये प्रशंसनीय हैं।

हे भव्य! तू सम्यक्त्वके पश्चात् व्रतोंको भी धारण कर। जबतक सर्वसंग त्यागी मुनिपना न हो सके, तबतक एकदेश त्यागरूप व्रत तो अवश्य धारण कर।

(पृष्ठ २२ का शेष भाग) (छहढाला - प्रवचन)

नहीं ? तथा सम्यग्दर्शनादि द्वारा सिद्ध अवस्था प्राप्त होने पर परम सुख होता है–यह बात यथार्थ है कि नहीं ?–यह सभीका विचार कर और उपर कहे अनुसार ही तुझे प्रतीति आ रही हो तो संसारसे छूटकर सिद्धपद प्राप्तिका हम जो उपाय कहते है उसे कर ! विलम्ब मत कर। यह उपाय करनेसे ही तेरा कल्याण ही होगा।

मिथ्यात्वादि सेवन से हुआ जीवको जो दुःख;
उसे छोड़कर सम्यक् भजो होगा यथार्थ सुख।
ऐसा सम्यक् सेवन करो जो जगमें है सार,
वीतरागविज्ञान से होंगे भव से पार।

इस प्रकार पंडित श्री दौलतरामजी कृत छहढालामें दुःखके कारणरूप मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान-चारित्रका वर्णन करके उसे छोड़नेका उपदेश देनेवाला दूसरा अध्याय पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके प्रवचन पूर्ण हुआ।

सुवर्णपुरी समाचार :—

अध्यात्मतीर्थ सुवर्णपुरीका धार्मिक वातावरण अनंत उपकारमय पूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी एवं उनके अनन्य भक्त पूज्य बहिनश्री चंपाबेनके कल्याणवर्षी पुण्यप्रतापसे, आशीर्वादसे देव-गुरु-शास्त्रकी, धर्मकी आराधनामय रहता है एवं पं. रत्नश्री हिंमतभाई जे. शाहने बनाये हुए सुमधुर काव्यसे वातावरण भक्तिमय रहता है :—

प्रातः : ६-०० से ६-२० : पूज्य बहिनश्रीकी धर्मचर्चाकी ऑडियो-टेप
सुबह : ८-३० से ९-३० : परमागम श्री समयसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका (१५वीं बारका) सीडी प्रवचन
दोपहर : ३-०० से ४-००: श्री प्रवचनसार पर पूज्य गुरुदेवश्रीका टेप प्रवचन
दोपहर : ४-०० से ४-३० : श्री जिनेन्द्र भक्ति
रात्रि : ८-०० से ९-०० : श्री अष्टप्राभृत पर पूज्य गुरुदेवश्रीका सीडी प्रवचन

✻ इस वर्ष भादों माहका पर्युषणपर्व ज्ञानवैराग्यभीनी तत्त्वोपासना, मुनीन्द्रमहिमा, पूज्य गुरुदेवश्री एवं पूज्य बहिनश्रीकी उपकारमहिमाकी दृष्टिसे प्रभावनापूर्ण रहा। पर्युषणपर्व आराधनाके लिये बाहरगाँवसे अनेक मुमुक्षु महेमान पधारे थे। विधानपूजाके समय विशाल परमागममन्दिर एवं प्रवचनके समय स्वाध्यायमंदिर भर जाता था। क्षमावणीपर्वके दिन, इस साधनातीर्थकी पवित्र यात्रा एवं पूज्य गुरुदेवश्री और पूज्य बहिनश्रीके प्रति क्षमावणी स्तुतिपूर्वक क्षमायाचनाके लिये अन्य गाँवोंसे अधिक संख्यामें मुमुक्षु महानुभाव पधारे थे।

❀ **'समयसार गुर्जरभाषा अनुवाद' पूर्णाहुतिका वार्षिक दिन-विजयादशमी :** श्री समयसार परमागमका गुर्जर भाषा अनुवादकी पूर्णाहूतिका वार्षिक दिन, आसो शुक्ल दशमी (विजयादशमी) ता. १३-१०-२०२४ रविवारके रोज ग्रंथाधिराज श्री समयसारकी, विशेष भक्तिपूर्वक मनाया जायेगा।

❀ **महावीरनिर्वाण-पंचाह्निक-महोत्सव :** प्रतिवर्षानुसार 'श्री महावीर-निर्वाण-कल्याणक' —दीपावलिका वार्षिक मंगल अवसर कार्तिक वदी-१२, सोमवार, ता. २८-१०-२०२४ से कार्तिक वदी ३०, शुक्रवार, ता. १-११-२०२४, पाँच दिन तक 'श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणकमंडल विधानपूजा', महावीरजिनेन्द्र भक्ति, एवं अध्यात्मज्ञानोपासना आदि विविध कार्यक्रम सह मनाया जायेगा।

❀ **'सुप्रभातदिन' :** कार्तिक सुदी-१—नूतन वर्षारंभका 'सुप्रभातदिन' ता. २-११-२०२४, शनिवारके दिन सुप्रभातस्तोत्र, पूजाभक्ति एवं गुरुदेवश्रीके सुप्रभात-प्रवचन आदि विशेष समारोहपूर्वक मनाया जायेगा।

❀ **कार्तिकी-नन्दीश्वर-अष्टाह्निका :** कार्तिक सुदी ७, शुक्रवार, ता. ८-११-२०२४, से कार्तिक सुदी १५, शुक्रवार, ता. १५-११-२०२४—तक 'पंचमेरु-नन्दीश्वर पूजनविधान' एवं अध्यात्मतत्त्व ज्ञानोपासनापूर्वक आनन्दोल्लास सह मनाया जाएगा।

प्रौढ व्यक्तियोंके लिए जानने योग्य प्रश्न तथा उत्तर

प्रश्न–६५ : राग-द्वेष आत्माके है या जड़के है ?

उत्तर : राग-द्वेषभाव आत्माकी पर्यायमें होते हैं उस अपेक्षासे तो आत्माके है, लेकिन राग-द्वेषभाव तो शुद्ध आत्माका स्वरूप नहीं हैं—इसलिये आत्माका शुद्धस्वरूप बतानेके लिये उसे जड़ भी कहा जाता है।

प्रश्न–६६ : इन्द्रियके अतिरिक्त जीव हो सकता है या नहीं ?

उत्तर : हाँ, सिद्धदशामें अनंत जीव है उन्हें इन्द्रिय या शरीर नहीं है। उसी प्रकार जीव जब एक गतिमेंसे दूसरी गतिमें गमन (विग्रहगति) करता है तब भी उसे इन्द्रिय या स्थूल शरीर नहीं होते, और वास्तवमें तो सभी जीव इन्द्रिय और शरीर बिनाके ही है, इन्द्रिय और शरीर तो जड़ है, ज्ञानस्वरूप आत्मा उससे पृथक् ही है। व्यवहारसे जीवको पहिचाननेके लिये एकेन्द्रिय आदि नाम दिये हैं, वह ऐसा सूचित करता है कि जीवको ज्ञानमें उस प्रकारका क्षयोपशम है।

प्रश्न–६७ : जड़ और पुद्गलमें क्या फर्क है ?

उत्तर : जडका लक्षण अचेतनपना है इसलिये 'जड' कहते उसमें जीवके अतिरिक्त पांच द्रव्योंका समावेश हो जाता है और पुद्गलका लक्षण रूपीपना है इसलिये पुद्गल कहते सिर्फ पुद्गल द्रव्य लक्षमें आता है, जड तो रूपी या अरूपी भी होता है, लेकिन पुद्गल तो रूपी ही होता है।

प्रश्न–६८ : सत्देवका संक्षिप्तमें स्वरूप क्या ?

उत्तर : सर्वज्ञता, जहाँ सर्वज्ञता होती है वहाँ वीतरागता होती ही है।

प्रश्न–६९ : 'अर्हंतदेव' और 'स्वर्गके देव' इन दो देवोंमें क्या फर्क है ?

उत्तर : अर्हंतदेव पूजनीक है। वे पूर्णज्ञानी है, विकार रहित है, जीवनमुक्त है, भवरहित है लेकिन स्वर्गके देव तो अपूर्णज्ञानवाले है, विकार सहित है, संसारी है, भवसहित है, अर्हंतप्रभुका देवपद गुणके कारण है इसलिये वे पूजनीय है और स्वर्गका देवपद तो पुण्यका फल है इसलिये देवपद पूजनीय नहीं है। स्वर्गके देवोंमें कितने ही देव सम्यग्दृष्टि भी है लेकिन पंचपरमेष्ठीरूप देवपद स्वर्गमें नहीं होता।

प्रश्न–७० : कुदेव, कुगुरुकी भक्ति करनेसे जीवको क्या लाभ होता है ?

उत्तर : कुदेव-कुगुरुकी भक्ति करनेसे जीवको कोई भी लाभ नहीं होता, परंतु मिथ्यात्वके पोषणसे संसारभ्रमण होता है, और जीवके गुणका घात होता है।

प्रश्न–७१ : अगृहीत मिथ्यात्वका फल क्या ? और गृहीत मिथ्यात्वका फल क्या ?

उत्तर : दोनोंका फल संसार ही है, अगृहीत मिथ्यात्व अनादिसे चला आ रहा है, गृहीत मिथ्यात्व नया ग्रहण किया है और उस गृहीत मिथ्यात्व अगृहीत मिथ्यात्वको पोषण देता है।

(१३३) छोटे बच्चोंके लिए प्रश्नोत्तर

(नीचे दिये गये प्रश्नोंके उत्तर बालपोथीमेंसे मिलेंगे।)

(A) (१) नमन करने योग्य ..... है।
(२) देव ..... और ..... है।
(३) मुक्तिका मार्ग ..... बतलाते हैं।
(४) अरिहंत जैसा ..... है।
(५) मैं ..... स्वभावी ..... हूँ।
(६) मैं मेरे ..... से ..... हूँ।
(७) शरीर ..... है।

(B) सही जोड़ी बनाओ।

(१) जीव द्रव्य	(१) अवगाहन हेतुत्व
(२) पुद्गल द्रव्य	(२) स्थिति हेतुत्व
(३) धर्म द्रव्य	(३) परिणमन हेतुत्व
(४) अधर्म द्रव्य	(४) ज्ञान-दर्शनरूप
(५) आकाश द्रव्य	(५) स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रूपी
(६) काल द्रव्य	(६) गति हेतुत्व
(७) जीव तत्त्व	(७) मोह राग-द्वेषरूप भाव
(८) अजीव तत्त्व	(८) शुभाशुभ भावमें अटकना
(९) आस्रव तत्त्व	(९) ज्ञायक, चेतनपना
(१०) बंध तत्त्व	(१०) जड - चेतन
(११) संवर तत्त्व	(११) शुद्धिकी पूर्णता
(१२) निर्जरा तत्त्व	(१२) शुद्धिकी उत्पत्ति
(१३) मोक्ष तत्त्व	(१३) शुद्धिकी वृद्धि

बालकोंके लिये दिये गये प्रश्नोंके उत्तर

उत्तर-A

(१) पंच परमेष्ठी (५) ज्ञान आत्मा
(२) अरिहंत सिद्ध (६) ज्ञान जानता
(३) अरिहंत (७) अजीव
(४) शुद्धात्मा

उत्तर-B

१—४	६—३	१०—८
२—५	७—९	११—१२
३—६	८—१०	१२—१३
४—२	९—७	१३—११
५—१		

आत्मधर्म सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचना

आप सभी हमारे मुमुक्षु हैं। हिन्दी आत्मधर्म आपको बहुत समयसे भेज रहे है। अब ट्रस्टने निर्णय लिया है कि जो ग्राहक १५ वर्षसे अधिक समयसे है उनको अब आगामी अंक भेजना बंद किया जायेगा। यदि जिन्हें आत्मधर्म मासिक पुनः चालु करवाना चाहते हो तो वे आत्मधर्म कार्यालयको एक संमतिपत्र भेजे जिससे आपको पुनः ५ वर्षके लिये अंक रीन्यु किया जायेगा। इसलिये आप अपना उचित उत्तर (संमति पत्र) भेजे उसके अनुसार आपको अंक भेजा जायेगा।

इसके अलावा यदि आप फीझीकल कोपी नहीं चाहते हो और **email** अथवा **whatsapp** पर **PDF** चाहते हो तो उस अनुसार आपको भेजनेमें आयेगा।

आप अपना संमतिपत्र : आत्मधर्म कार्यालय अथवा मेल अथवा वोटसेप पर भेज सकते है।

आत्मधर्म कार्यालय,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ-३६४२५० (जि. भावनगर)

email contact@kanjiswami.org
Whatsapp No 9276867578

सम्मति पत्र

प्रति श्री आत्मधर्म कार्यालय

मैं .....

सूचित करता हूं कि आपके द्वारा भेजे जानेवाला आत्मधर्म अंकका हम नियमित पठन एवं स्वाध्याय करते है। तथा किसी भी प्रकारका अविनय अशातना हमारे द्वारा नहीं हो रही है। इसलिये हमारा आत्मधर्म अंक रीन्यु करनेकी विनती करते है।

आत्मधर्म फिझीकल /**email** / **whatsapp.....** ..... द्वारा हमें भेज देंगे।

ग्राहक नंबर : .....

नाम : .....

पता : .....

.....

.....

संपर्क नंबर : .....

पूज्य गुरुदेवश्रीके हृदयोद्‌गार

● निमित्तसे भिन्न व रागसे भी अधिक (भिन्न) - ऐसे निज चैतन्य-स्वभावका भान होनेके उपरान्त उसका वेदन गहन हो जाता है और तब परिग्रहकी ममता छूट जाती है – ऐसी दशावाले श्रावकको ही प्रतिमा होती है। ६५५।

● उपवासका ऐसा अर्थ है कि - इन्द्रिय तथा मनके विषयोंमें प्रवृतिहीन होकर आत्मामें वास करें, तो उपवास है। इहलोक तथा परलोक-सम्बन्धी विषयोंकी वाँछा न करना ही इन्द्रियजय है, तथा आत्मस्वरूपमें लीन रहना और शास्त्र-अभ्यास तथा स्वाध्यायमें मनको प्रवृत्त करनेकी ही उपवासमें प्रधानता है। जिस प्रकारसे आकुलता न पैदा हो उस प्रकारसे क्रियाके नाम पर मर्यादापूर्वक एक दिवसके आहारका त्याग करना – इस प्रकारसे उपवास नामक अनशन-तप होता है। ६५७।

● जिसे तत्त्वज्ञान नहीं है उसका आचरण भी यथार्थ नहीं होता। जैनमतमें तो ऐसा क्रम है कि सर्व प्रथम तत्त्वज्ञान होता है और पश्चात् जिसका त्याग करना है उसके दोषको जाने-पहचाने तथा दोष-नाशसे प्रकट होने वाले गुणोंका भी यथार्थरूपसे जाने। ६५८।

● प्रश्न :- बाह्यमें तो चमत्कार दिखलाते हैं, तो यहाँ भी कुछ चमत्कार है क्या ?

उत्तर :- हाँ, यह आत्मा स्वयं ही ऐसा चैतन्यचमत्कार है कि उसकी प्रतीति कर उसमें एकाग्र होनेसे केवलज्ञान प्रकट होता है - देखो, यह है चैतन्यका चमत्कार ! सर्वज्ञके अलावा अन्यत्र कहीं भी ऐसा चमत्कार हो तो बतलाओ ! तथा प्रत्येक आत्मा असंख्य-प्रदेशी है - यब बात भी अन्य कहीं हो तो बतलाओ ? ६५९।

● ज्ञानका वीर्य ज्ञानमें कार्यशील होकर उसीमें रमे - वही मेरा स्वरूप है। आत्माका लक्षण ज्ञान है; उसे भूलकर रागादिमें अटके तो वह बंधका लक्षण है। ६६०।

● जो जीव प्रसन्नचित्तसे-उल्लाससे-स्वलक्ष्यपूर्वक; पुण्य-पापका उल्लास छोड़कर, दया-दानके विकारसे रहित तथा शरीर-मन-वाणीसे भी रहित आत्माकी बात सुनते हैं; वे धन्य हैं। ६६१।

● समयसार गाथा ४ में श्रुत शब्दका प्रयोग है; जिसका हेतु है कि निज-अभिप्राय अनुसार अध्ययन करते जाएँ तो कार्यकारी नहीं। (मर्म) ज्ञानीसे ही समझना चाहिए; वह कोई पराधीनता नहीं है; जिसकी पात्रता हो उसे ज्ञानी मिले बिना नहीं रहते। सत् (प्राप्ति) के लिए सत् का निमित्त चाहिए। अज्ञानी जीव धर्म-प्राप्तिमें निमित्तभूत नहीं हो सकते।६६२।

३६
आत्मधर्म
अक्टुबर-२०२४
अंक-२ ● वर्ष-१९

Posted at Songadh PO
Publish on 5-10-2024
Posted on 5-10-2024

Registered Regn. No. BVR-368/2024-2026
Renewed upto 31-12-2026
RNI Registration No. GUJHIN/2006/18882
वार्षिक शुल्क 9=00 आजीवन शुल्क 101=00

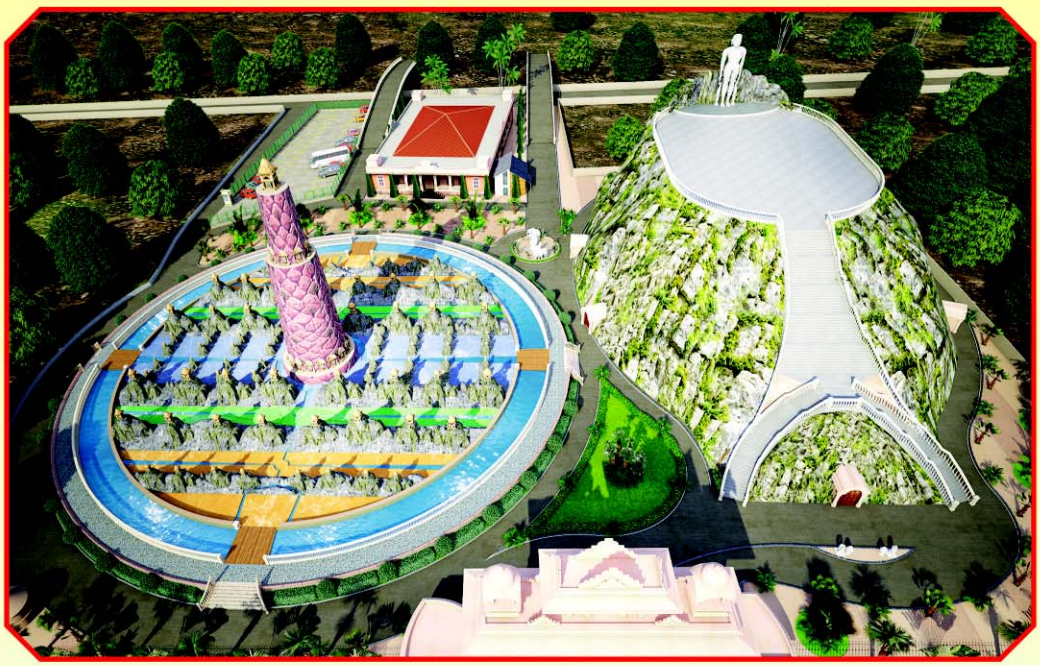

Printed & published by Navin Popatlal Shah on behalf of shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust and Printed at Smruti Offset, 13, Kahanwadi, Ankur School Road At-Songadh Pin-364250 and published from Shri Digambar Jain Swadhyay Mandir Trust At-Songadh, Ta. sihor, Dist. Bhavnagar Pin-364250.

Editor : Rameshchandra Vrajlal Shah.

If undelivered Please return to :—
Shri Dig. Jain Swadhyay Mandir Trust
SONGADH-364 250 (INDIA)
Phone No. (02846) 244334
Fax (02846) 244662

www.kanjiswami.org
email : contact@kanjiswami.org